CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

POST REGN. NO.
MTR 22/09-11

एक अंक
20 रुपये

455
मार्च 2010

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

मासिक

श्रीहरिनाम

परम आनन्द परिचायक

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, वृन्दावन

Kritikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परमपूज्य बाबा पं. श्रीगयाप्रसादजी के वचनामृत

सदाचार

सदाचार में दो शब्द हैं – सत्+आचार
सत् कौ अर्थ है – अति उत्तम
जो अति श्रेष्ठ पुरुष हैं – सन्त हैं, इनके आचरण
कूँ ही सदाचार कह्यौ जाय है
सदैव सन्तन की जीवनी पढ़ौ अथवा
जो वर्तमान में सन्त हैं – बड़े गौर सों इनके
आचरण देखौ – इनकी रहनी देखौ
ये कितने सरल हैं, ये कितने विशाल हृदय हैं
कितने उदार हैं, कितने क्षमाशील हैं
दुःख-सुख सहवे में कितने सम हैं,
समर्थ हैं भूल सों हू क्रोध न आवै है, न करै हैं
काहू की आलोचना नहीं करै हैं।
काहू कौ अनिष्ट नहीं चाहै हैं।
स्त्री जाति सौं सदैव बचते-बचाते रहैं हैं
धन-धान्य-द्रव्य सौं सम्पर्क नहीं राखैं हैं
वेद पुरान, उपनिषद्, शास्त्र तथा सन्तन की वाणिन में
जिन सदाचारन कौ वर्णन है
वे ये ही सदाचार हैं – साधक जैसे-जैसे इन सदाचारन कूं
धारण करतौ जाय है, वैसे-वैसे वह माया के
प्रपंच सौं निकलतौ जाय है
और सदैव सर्वोत्तमता की ओर बढ़तौ जाय है।
सत्पुरुषन् कौ संग, सद्ग्रन्थन कौ आलोड़न सद्विचार
एवं सतत् सत्कर्म ही सदाचार हैं।

●

प्रस्तुति : आचार्य श्रीपीयूषजी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्ष 40 | अंक 03
मार्च 2010

• श्रीश्रीकृष्णचैतन्यनित्यानन्दौ जयतः •

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

455
गौरांगाब्द 525

भगवद्भक्ति-साहित्य प्रचारार्थ 40 वर्षों से प्रकाशित मासिक

श्रीहरिनाम

आदि सम्पादक : व्रजविभूति श्रीश्यामदास : श्रीश्यामलालजी हकीम

श्रीपाण्डव गीता

श्रीराम नारायण वासुदेव, गोविन्द वैकुण्ठ मुकुन्द कृष्ण।
श्रीकेशवानन्त नृसिंह विष्णो, मां त्राहि संसार-भुजङ्ग-दष्टम्।।15।।

हे श्रीराम! हे नारायण! हे वासुदेव! हे गोविन्द! हे वैकुण्ठ! हे मुकुन्द! हे कृष्ण! हे केशव! हे अनन्त! हे नृसिंह! हे विष्णो! संसाररूपी सर्प से डसे हुये मेरी रक्षा करो।।15।।

रामनाम मणिमाल

कंठ धर राम नाम मणिमाल।
सच्ची शोभा होवे जिससे, कर दे तुझे निहाल।।
अन्य वसन भूषन कितने भी, पहनो हीरालाल।
दे न सकेंगे कुछ भी तुझको, गर्व-कूप दें डाल।।
परम प्रकाश होय हिय नाशें, पापताप जंजाल।
कंठ धरे यह माल करेंगे, तुझपै कृपा-कृपाल।।
प्रभु पादाम्बुज पा न चले फिर, कुटिल काल की चाल।।
'हरीदास' आनन्द अलौकिक, देय रंक महिपाल।।

श्रीनर्मदानन्द सरस्वती 'हरिदास'

www.harinampress.com email : harinampress@gmail.com

श्रीहरिनाम प्रत्येक माह की 15 व 16 दिनांक को निश्चित ही भेजा जाता है

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्म से लाभ तक

सम्पादकीय

समय परिवर्तनशील है। गतिशील है। समय के साथ-परिस्थितियाँ बदलती हैं। सोच बदलती है, जीवन बदलता है। जीवन शैली बदलती है। धर्म, उपासना, साधन सब कुछ बदलता है।

प्राथमिकताएँ बदलती हैं। भय एवं भय का कारण बदलता है। और बदलती है सोच और सोचने का ढंग। हम प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करें तो जिज्ञासु यही पूछता था कि मेरा धर्म क्या है। अर्जुन ने श्रीगीता में अनेकों बार श्रीकृष्ण से पूछा कि-हे पार्थ! आप कृपा करके मुझे मेरा धर्म बताएँ और श्रीकृष्ण ने उसे बताया, उसका पालन किया।

यह वह समय था जब धर्म सर्वोपरि था। जो निष्ठावान थे, वे निष्ठा से धर्म का पालन या आचरण किया करते थे। और जो भयभीत थे वे भी अधर्म के भय से धर्म का आचरण या पालन करते थे। हाँ! अधर्मी तो तब भी थे-आज भी हैं। सदैव रहेंगे-यह सृष्टि का नियम है।

'धर्म' शब्द रूढ़ि में ऐसा लगता है जैसे पाठ-पूजा, भजन-कीर्तन के लिए कहा गया हो। धर्म का वास्तविक अर्थ है-वस्तु का मूल स्वभाव। जैसे अग्नि का मूल स्वभाव है जलाना। पानी का मूल स्वभाव है बहना। ऐसे ही कलम का मूल स्वभाव है-लिखना। तो यह सब इनके-इनके धर्म हैं। और साथ ही मैं यह भी लिखता चलूँ कि मानव मात्र का मूल-स्वभाव या स्वरूप है 'जीवेर स्वरूप हय नित्य कृष्ण दास'-यानि भगवान् श्रीकृष्ण का दासत्व, उनकी सेवा, उनकी भक्ति ही हमारा मूल स्वभाव है-अतः यही हमारा या प्रत्येक प्राणी का धर्म भी है। इसलिए भगवद्भक्ति भजन-कीर्तन करने वाले को लोग धार्मिक कहते हैं। कहना भी चाहिए। वैसे एक कर्मचारी यदि अपने मालिक की वफादारी पूर्वक सेवा कर रहा है तो वह भी अपने कर्मचारी धर्म का पालन कर रहा है तो वह भी धार्मिक ही कहलायेगा।

तो पहले लोगों के केन्द्र में धर्म था। कुछ भी बात शास्त्रों ने कहनी थी तो यही कहा गया 'यह आपका धर्म है'। अच्छा! यह हमारा 'धर्म' है-इतना सुनने समझने के बाद पढ़ा-लिखा हो या साधारण सीधा-सादा : धर्म के नाम पर सभी इस बात को मानते थे आचरण करते थे। हमारे लाभ, हमारे हित, हमारे स्वास्थ्य, हमारी लम्बी आयु, हमारी मानसिक शान्ति, हमारे वंश की वृद्धि, हमारे धर्म की वृद्धि, हमारी सम्पत्ति की वृद्धि, हमारे यश की वृद्धि से लेकर हमारे परम कल्याण की जितनी भी बातें थीं-उन्हें 'धर्म' कह कर बता दिया गया था। कारण था कि धर्म

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के नाम पर कुछ भी आदेश होता था वह अकाट्य था। सर्वमान्य था।

समय बदला। लोगों ने क्यों ? कहना प्रारम्भ किया। किसी ने पूछा–'हम माता–पिता की सेवा क्यों करें; जवाब आया 'यह तुम्हारा धर्म है' प्रश्न आया; 'माना कि यह धर्म है, तो क्यों करें हम धर्म ? हम तो नहीं करते–धर्म का पालन। जवाब बना–'भाई! धर्म का पालन नहीं करोगे तो पाप होगा–करोगे तो पुण्य होगा, कुछ समय ऐसा चला कि लोग–पाप और पुण्य के नाम पर. अधर्म व धर्म का पालन करते रहे। अब उन्होंने धर्म से डरना छोड़ दिया अब वे पाप से डरने लगे और पुण्य से सन्तुष्ट होने लगे।

नाम 'धर्म' हो या नाम 'पुण्य' हो दोनों में बात हमारे लाभ की ही थी। लाभ की ही है। समय कुछ बदला–धर्म से पुण्य हुआ पुण्य से अब हम लोग सीधे 'लाभ' पर आ गये। घूँघट भी हट गया। सिर ढकना भी हट गया। सीधा सुन्दर मुखमण्डल प्रकट हो गया। समय आ रहा है या आ गया है हम मुखमण्डल से भी नीचे उतरने की ओर चल दिये हैं। प्रभु इच्छा। अब आम लोगों को 'लाभ' की भाषा समझ में आने लगी। अब आप धर्म कहिये। कहते रहिये। पुण्य कहिये–कहते रहिये। कोई नहीं सुनेगा। जैसे ही आपने कहा कि–यह आपके लाभ की बात है। शीघ्र ही हमारे कान खड़े हो जाते हैं। बातें वही हैं–शब्द बदले हैं।

माता–पिता की सेवा करो–यही तुम्हारा धर्म है। माता–पिता की सेवा करो इससे पुण्य होगा। माता–पिता की सेवा करो–इसी में तुम्हारा लाभ है। अब न धर्म समझ आता है, न पुण्य। अब 'लाभ' शब्द अति महत्वपूर्ण है। कुछ लोग इसके बाद भी पूछते हैं–भाई! क्या लाभ है ? अरे भाई एक तो यह लाभ है कि–यदि उनके पास कुछ सम्पत्ति हुयी, वह सहज में मिल जायेगी, दूसरा लाभ यह है कि उनका जो अनुभव होगा, वह तुम्हें बतायेंगे। और सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि यदि तुम अपने माता–पिता की सेवा करोगे तो तुम्हारे बच्चे भी तुम्हारी सेवा करेंगे–हुआ न लाभ ही लाभ। लाभ के नाम पर बात समझ आ गयी। मैं भी अब लाभ शब्द का प्रयोग अधिक करने लगा हूँ।

वैसे भी यह बातें जन साधारण के लिए हैं। और मार्गदर्शन, ज्ञान आदि भी जनसाधारण के लिए ही होना चाहिये। ज्ञानी तो ज्ञानी है ही। सन्त और विद्वान् तो सन्त

एक अद्वितीय
तेज, जो
किसी क्रीम या
फेसवाश
से नहीं मिलेगा
मिलेगा
जीव मात्र के
परम धर्म
भगवद्भक्ति से

विद्वान हैं ही। उनके लिए क्या मार्गदर्शन, क्या भय, क्या उपदेश, तो चलिए लाभ ही सही। हमारा वास्तविक लाभ किसमें है–भाई! हमारा वास्तविक लाभ भगवान् के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भजन में भक्ति में–सेवा में ही है, क्योंकि यही एक मानव शरीर ऐसा है जिसके द्वारा भगवत्प्रेम प्राप्ति सम्भव है। पेट तो पशु–पक्षी भी भर लेते हैं। उनका कोई व्यापार भी नहीं चलता। वे कहीं नौकरी भी नहीं करते हैं। यह मानव जीवन प्रभु की शरणागति के लिए मिला है–और सबसे बड़ा लाभ यही है कि हम प्रभु के शरणागत हो जांय। और प्राप्त करें एक अद्वितीय तेज अपने चेहरे पर, जो किसी क्रीम या फेसवाश से नहीं मिलेगा। अद्वितीय आनन्द, अद्वितीय सुख, अद्वितीय सन्तुष्टि और सभी कुछ दुर्लभ एवं अद्वितीय, जो संसार में तो है ही नहीं–तो मिलेगा कहाँ से ? संसार में तो मिलेगा दुःख, अपमान, क्लेश, हानि, अपयश, रोग और भी बहुत कुछ। अभी भी समय है प्रारम्भ कर दें तो लाभ ही लाभ है।

दासाभास–गिरिराज

'कल्याण' का जीवनचर्या अंक

गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र 'कल्याण' का इस बार जीवनचर्या अंक प्रकाशित हुआ है। गत अनेक विशेषांकों की भांति यह अंक भी अपने आप में सम्पूर्ण है, उपयोगी है, पठनीय है।

पूर्व में अनेक पुराण आदि भी विशेषांकों के रूप में प्रकाशित हुए हैं–ग्रन्थ संरक्षण की दृष्टि से वह प्रकाशन तो उपयोगी था ही, लेकिन आजकल की देश–काल–परिस्थिति के अनुसार ऐसे विषय हम जैसे साधारण पाठकों के लिये अधिक उपयोगी हैं।

पुराण पठन की योग्यता प्राप्त करने के लिये हमें पहले प्राथमिक सदाचार, आचार–विचार, दिनचर्या आदि का ज्ञान ठीक उसी प्रकार होना आवश्यक है, जैसे कि एम.ए. करने के लिये हाईस्कूल, इण्टर, बी.ए. करना आवश्यक है। इस विषय में यह अंक पर्याप्त मौलिक एवं स्तरीय सामग्री से युक्त है। देश के अनेक विद्वानों एवं विचारकों के निबन्ध, चिन्तन एवं प्राचीन एवं अर्वाचीन सन्तों के चरित्र इसमें प्रकाशित किये गये हैं।

श्रीहरिनाम के सम्पादक, दासाभास गिरिराज का भी एक निबन्ध पृष्ठ 117 पर प्रकाशित हुआ है जिसमें चैतन्य महाप्रभु द्वारा उपदेशित वैष्णवों की दिनचर्या का संक्षेप वर्णन किया गया है।

इस अंक के प्रकाशन–सम्पादन में अमर–उजाला के प्रतिदिन प्रकाशित 'धर्मक्षेत्रे' के लेखक श्रीशिवकुमार जी गोयल का भी सराहनीय योगदान रहा है माननीय सम्पादक श्रीखेमका जी के साथ–साथ उन्हें भी प्रणाम एवं बधाई।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होली पर इस बार रसिक शिरोमणि ठाकुर ने कुछ अलग ही भाव से होली खेली। स्थान निश्चित था। सब सखियाँ एकत्र होकर वहाँ पहुँच गयीं। देखा तो वहाँ कोई ग्वाल बाल सखा आदि नहीं थे। श्रीकृष्ण भी नहीं थे। अभी सखियाँ चर्चा कर ही रही थीं कि श्रीकृष्ण अकेले के अकेले गुमसुम से शान्त से चुपचाप प्रकट हुए। और अविचल खड़े हो गये एक स्थान पर।

सभी सखियाँ स्तब्ध! अरे आज ये अकेला कैसे? पिचकारी कहाँ है? रंग कहाँ है? ऊधमबाजी का सामान कहाँ है। लेकिन श्रीकृष्ण हैं कि शान्त, अचल खड़े हैं।

सखियों ने सोचा स्टार्टिंग प्राब्लम है, कुछ गीत गाना शुरु करती हैं–शायद कुछ रिएक्शन हो और वे गाने लगीं–

नेक ठाड़ो रह श्याम तोपै रंग डारौं।
अबीर गुलाल मलौं मुख तेरे, गालन पै गुलचा मारौं।।
चोवा चन्दन और अरगजा घिसि घिसि के तोपै डारौं।
'चन्द्रसखी' भज बालकृष्ण छबि तन-मन-धन तोपै वारौं।

लेकिन कोई असर नहीं हुआ। श्यामसुन्दर जस की तस शान्त खड़े हैं। सखियों ने फिर उन्हें पिछले वर्ष की याद दिलायी। शायद इसे सुनकर कुछ हलचल हो–

मदमातो महीना होरी को।
प्रेम उमंग बजाय चंग को गावत रसिक किशोरी को।।
हाट बाट रोकत व्रजबाला खोलत घूँघट गोरी को।
गाल गुलाल लगावत मोहन काम करत बरजोरी को।।
राजकुमार है नाम लजावत नन्द-यशोमति जोड़ी को।
काहे कूँ इतनो इतरावै 'श्याम' गुलाम किशोरी को।।

सखियों की यह चेष्टा भी व्यर्थ। सखियाँ साहस भी नहीं कर पा रही हैं। श्यामसुन्दर एक तो अकेले, फिर गुम सुम। पता नहीं आज क्या बात हो गयी।

अच्छा! हम ब्रजवासियों की एक खास आदत है। जब हम झल्लाते हैं तो शीघ्र ही मां–बाप तक पहुँच जाते हैं। सखियों ने भी आव देखा न ताव और गाने लगीं–

होरी हो व्रजराज दुलारे।
अब क्यों जाय छिपे जननी ढिंग,
रे द्वै बापन वारे।।
कै तौ निकसि के होरी खेलौ,
कै मुख सौं कहौ हारे,
जोड़कर आगे हमारे।। होरी हो।।
बहुत दिनन सों तुम मनमोहन,
फागहि फाग पुकारे।
आज देखियो सैल फाग की,
पिचकारिन के फुहारे,
चलें जब कुमकुमा न्यारे।। होरी हो।।
निपट अनीति उठाई तुमने,
रोकत गैल गिरारे।
'नारायण' सब खबरि पड़ैगी,
नैक तो आयके द्वारे,
सूरत अपनी तू दिखारे।। होरी हो।।

होली में इस बार क्या हुआ?

लेकिन श्याम सुन्दर के चेहरे पर शिकन नहीं, कोई प्रभाव नहीं। सखियाँ परेशान। श्रीराधा जी बोलीं–आज यह गुम सुम है। ऐसा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करो ये आज राजी–राजी नहीं मानेगा। इसे भी एक सखी बना लो और आज हम किसी और से होली खेलने चलेंगीं। इसका तो बल्ब आज फ्यूज हो गया है और सखियों से श्रीराधा जी ने कहा–

रसिया को नारि बनावौ री।
कटि लहंगा उर मांहि कंचुकी,
चुंदरी सीस उढावौरी।।
गाल गुलाल दृगन बिच काजर,
बेंदी भाल लगावौरी।
'नारायण' तारी बजाय के,
यशोमति निकट नचावौरी।।

अब थोड़ी हलचल हुयी–रसिक शेखर के मन में। अरे! यह क्या। यह तो मुझे गोपी बना देंगीं। नर से नारी बना देंगी। प्रभु सकपकाये और जैसे ही वंशी की एक तान मारी तो झाड़ियों में छुपे सारे सखा भी सामने आ गये। और बोले कान्हा! आज तो तूने सबरी इज्जत खराब करा दी होती। यह आज क्या हो गया तुझे।

रसिक शेखर हैं न! धैर्य की परीक्षा करके, रस की उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहे थे। फिर तो सखाओं ने श्रीकृष्ण को सजा दिया। हाथ में लाठी दे दी और....

बनि आयो रे रसिया होरी को।
हाथ लकुटिया काँधे कमरिया
माथे बेंदा रोरी को।
गली गिरारे ऐंडोई डोले ताकत है चित्त चोरी को।
'चन्द्रसखी' भज बालकृष्ण छबि रसिया राधा गोरी को।।

लेकिन प्रिया जी तो अड़ गयीं कि हम तो तुम्हें नारि बना कर ही छोडेंगे आज। तुमने बहुत नाट्क किया है आज। भला श्यामसुन्दर की क्या चले। श्यामसुन्दर ने बीच का रास्ता निकाला और कहा कि ठीक है–हम नारी बनते हैं आप 'श्याम' बनो–

रसनागर श्याम रची होरी।
श्यामा रूप बने मनमोहन श्याम स्वरूप बनी गोरी।।
मनमोहन सिर लसत चन्द्रिका मुकुट विराजत सिर गोरी।
रमकि झमकि सब सखी सहेली, आय मिली निज-निज टोरी।
अबीर गुलाल कुमकुमा केसर मार मची रस रंग बोरी।
ढपहिं बजावत गावत चाचरि उमड़ि चली श्रीवन खोरी।।
'मुदरा सखी' युगल छबि निरखत बार बार लखि तृण तोरी।

और फिर क्या था। फिर तो मचं गया धमाल और सब हो गये लालहिं लाल–

सखी सब हो गये लालहिं लाल।
ऐसो रंग चल्यौ पिचकारिन, ऐसो उड़्यो गुलाल।।
लाली लाल, लाल भये लालहुँ लाल भई व्रजवाल।
तरुवर लाल, लाल भये सरवर, शुक, पिक लाल मराल।।
धेनु लाल व्रजरेनु लाल भई, लाल भये सब ग्वाल।
बाहर लाल 'कृपालु' फाग को, भीतर लाल गोपाल।।

इतना हल्ला हुआ कि पूरा ब्रज होरी के रंग में रंग गया और सब गाने लगे–

आज बिरज में होरी रे रसिया होरी रे रसिया, बरजोरी रे रसिया।।
कौन के हाथ कनक पिचकारी कौन के हाथ कमोरी रे रसिया।।
कृष्ण के हाथ कनक पिचकारी राधा के हाथ कमोरी रे रसिया।।
अपने अपने घर से निकसीं कोई श्यामल कोई गोरी रे रसिया।।
उड़त गुलाल लाल भये बादर केशर रंग कू घोरी रे रसिया।।
बाजत ताल मृदंग झाँझ ढप और नागरे की जोड़ी रे रसिया।।
कै मन लाल गुलाल मंगाई कै मन केसर घोरी रे रसिया।।
सौ मन लाल गुलाल मंगाई दस मन केशर घोरी रे रसिया।।
'चन्द्रसखी' भज बाल कृष्ण छवि, जुग-जुग जीवौ यह जोरी रे रसिया।।

एक सखी नयी–नयी ब्रज में आयी थीं। वह अपनी ऊँची अटारी से यह सब होली का आनंद देख रही थी, लेकिन पहली बार। उसे आनंद तो आ रहा था, लेकिन वह उन सबके साथ जाकर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होली खेलने की हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी। दूसरी सखियों का जो हाल उसने देखा वह मन ही मन सोच रही थी।

मैं कैसे होरी खेलूँरी या साँवरिया के संग।
कोरे कोरे कलश मंगाए केसर घोरो रंग।
भर पिचकारी मेरे सन्मुख मारी चोली है गई तंग।।
तबला बाजै साँरगी बाजै और बाजै मुहचंग।
साँवरिया की बंसी बाजै, राधा जी के संग।।
चुनरी भिजोए लहंगा भिजोये छुटो किनारी रंग।
'सूरदास' कौ कहा भिगोये, कारी कामर अंग।।

श्याम सुन्दर ने उसके मन की बात जान ली और इशारे इशारे में उससे कहा–

गोरी तेरे नैना रंग रंगीले
हंसि-हंसि उठति निरखि तेरौ मुख घूँघट पर सकुचीले।

और श्याम सुन्दर के इशारे देखते ही वह तो मानो जीते जागते स्वप्न लोक में चली गयी और एक अद्‌भुत सा स्वप्न देखने लगी। जो बातें मन में दबी रह जाती हैं, वही स्वप्न में आती हैं–ऐसा ही कुछ हुआ इस सखी के साथ–

मैं तो सोय रही सपने में मोपै रंग डार्‌यौ नन्दलाल।
सपने में श्याम मेरे घर आये, ग्वाल बाल कोई संग न लाये
पौढ़ि पलका पै मेरे संग, टटोरन लागे मेरे अंग,
दई पिचकारी भर भर अंग
पिचकारी के लगत ही मो मन उठी तरंग।
जैसे मिसरी कंद की कोई पी लई भंग।
मानो पी लई भंग गाल मेरे कर दिये लाल गुलाल।।
खुले सपने में मेरे भाग, कि मेरी गई तपस्या जाग,
मनाय रही हंसि हंसि फाग सुहाग।।
हंसि हंसि फाग मनावती चरन पलोटत जाऊँ।
धन्य धन्य या रेणु कों फिर ऐसो नहिं पाऊँ।
फिर ऐसी नहिं पाऊँ, भई सपने मे माला माल।।
इतने में मेरे खुल गये नैना, देखूँ तो कछु लेना न देना,
परी पलका पै मैं पछितात, कि मींडत रहि गई दोऊ हाथ,
मन की मन में रह गई बात
मन की मन में रहि गई है आयो परभात।
बज्यो फजर को गजर तब रहे तीन ढाक के पात।।
तीन ढाक के पात रही कंगालिन की कंगाल।
होरी कों रस रसिकहि जानें, रसकूँ कूर कहा पहिचाने,
जो रस बरसे ब्रज के माँही,
सो रस तीन लोक में नाहिं,
ब्रह्मादिक ललचावते
धन्य धन्य ब्रज बाम।
गोवर्धन दश बिसे में
द्विजवर घसीराम।
द्विजवर घासीराम सदा
वे कहैं रंगाले ख्याल।

उसका स्वप्न जरुर टूटा। लेकिन वह एक सिद्ध–स्वरूप सखी थी। जैसे सिद्ध सन्त जो मानसिक चिन्तन करते हैं, उनके उस चिन्तन के प्रमाण प्रकट रूप में इन भौतिक चक्षुओं से सभी को दीखते हैं। यही हाल इस सखी के साथ हुआ था तो स्वप्न, लेकिन जब इसने अपनी चुनरी देखी तो वह हैरान रह गयी–

ऐसौ चटक रंग डार्‌यौ श्याम मेरी
चुंदरी में लग गयौ दागरी।
मोहूँ सी केतिक ब्रज सुन्दरि
उनसों न खेलै फाग री।।
औरन कौ अचरा नहिं पकरै याकी
मोहि सों पड़ गई लाग री।
बलि बलि दास वासब्रज छोड़ो ऐसी
होरी में लग जाय आग री।।

यह तो रही उस एक खास सखी की बात। इधर जोरदार होरी सखा–सखियों के बीच में चल रही है। कभी गोपियां भारी पड़ती हैं। कभी श्याम–सुन्दर का ठोल भारी पड़ता है। इसी रस्साकशी में एक समय ऐसा आया कि सखाओं पर भांग का प्रभाव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रारंभ हो गया। उनकी पकड़ ढीली पड़ गयी। गोपियों को मौका मिल गया। सबने श्यामसुन्दर को पकड़ लिया और उन्हें फिर से पछाड़ने लगीं–

होली खेलन आयौ श्याम
आज याहे रंग में बोरो री।
कोरे-कोरे कलस मँगाय
रंग केसर घोरो री।
रंग बिरंगौ करो आज
कारे ते गोरौ री।
पार परोसिन बोलि
याहे आँगन में घेरो री।।
पीताम्बर लेउ छीन याहे
पहराय देउ चोरो री।
हरे बाँस की बाँसुरिया
जाहे तोर मरोरो री।।
तारी दे दे याहि नचावो
अपनी ओरो री।।
'चन्द्रसखी' की यही बीनती
करो निहोरो री।।
हा हा खाय परे जब पैयाँ
तब याहे छोरो री।।

श्याम सुन्दर ने देखा। अब तो मैं अकेला पड़ गया। सखाओं पर भांग का प्रभाव। ये तो बात बिगड़ जाऐगी। तो तुरन्त उन्होंने अपने होली के विशेष अस्त्र का स्मरण किया और एक बहुत ही सुन्दर झुनझुनेदार 'ढप' उनके हाथ में उपस्थित हुआ। और उन्होंने उस ढप को जब बजाना शुरु किया तो सभी सखाओं का नशा तो उतरा ही उतरा ब्रज की बिल्डिंगों के खम्भे हिलने लग गये। और तो और ढप की धमक से पेट में बल पड़ने से सखियों के नीवी बंधन ढीले पड़ने लगे। और श्याम सुन्दर की इज्जत आज बच गयी–

ढफ बाज्यौ छैल मतवारे कौ।
ढफ की गरज मेरौ सब घर हाल्यौ हाल्यौ खम्ब तिवारे को।।
ढफ की गरज मेरौ सब तन हाल्यौ हाल्यौ झब्बा नारे कौ।।
'पुरुषोत्तम' प्रभु की छवि निरखै यह रसिया नंद बारे कौ।।

धीरे-धीरे ढप बन्द हुआ। सभी गोप-गोपियां सामान्य हुए। और सखियों ने उलाहना दिया श्यामसुन्दर को–

नैनन मैं पिचकारी दई,
मोय गारी दई, होरी खेली न जाये।
क्यों रे लंगर लंगराई मोते कीनी, केशर कीच कपोलन दीनी।।
लिये गुलाल ठाड़ौ ठाड़ौ मुस्काय।। होरी खेली।।
नैक न कान करत काहू की, नजर बचावैं भैया बलदाऊ की।
पनघट सौं घर लौं बतराय।। होरी खेली।।
औचक कुचन कुमकुमा मारै, रंग सुरंग सीस ते ढारे।
यह ऊधम सुनि सास रिसाय।। होली खेली।।
होरी के दिनन मोते दूनो दूनो अटकै,
सालिगराम कौन याय हटके
अंग लिपटि हँसि हा हा खाय।। होली खेली।।

श्याम सुन्दर की टोली पूर्व दिशा में और सखियों की टोली पश्चिम दिशा में अपने-अपने घर और खिसियाई हुयी सी गोपियां फिर वही मैया-बाप पर आ गयीं और गाती चलीं–

फगुवा दै मोहन मतवारे।
ब्रज की नारी गावत गारी, तुम द्वै बापन विच वारे।।
नंदजी गोरे जसुमति गोरी, तुम काहे तें भये कारे।।
पुरुषोत्तम प्रभु की छबि निरखत गोप भेष लियो अवतारे।

सखाओं से जवाब तो कुछ बना नहीं। श्याम सुन्दर तो नैनों से प्रिया जी को कुछ कहते जा रहे हैं और अन्य सखा जीभ से चिढ़ाते हुए अपने-अपने घर को भाग गये। और सभी ब्रजवासियों ने ठाकुर की इस दुर्लभ होरी लीला का दर्शन कर परम आनन्द प्राप्त किया।

।। बोलो होरी के रसिया की जै ।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सः तरति सः तरति सः लोकांस्तारयति।
(ना.भ.सू.50)

वे माया से तरते हैं तथा संसार के अन्य लोगों को भी माया से पार कर देते हैं।

गत सूत्रों में जो भक्तों की स्थिति दरशायी गयी है, उस प्रकार की भाव स्थिति होने पर भक्त स्वयं तो माया से पार हो ही जाता है अन्य परिजन और संसार के जो भी लोग उनके सम्पर्क में आते हैं, उनका भी उद्धार हो जाता है। सन्तों शास्त्रों तथा श्रीमद्भागवत में भगवान् कहते हैं कि मेरे भक्त के आचरण और भजन भाव से संसार पवित्र हो जाता है।

स्कन्ध पुराण के अनुसार-

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपार संवित्सुख सागरेऽस्मिल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।
(स्कन्ध पु. माहेश्वं. लौ.खे. 55/140)

जिस साधक का चित्त परमब्रह्म श्रीकृष्ण में तल्लीन हो गया, उसका कुल और उसको जन्म देने वाली माता का भी उद्धार हो गया। जिस पृथ्वी पर उसके पैर पड़ते हैं, वह पृथ्वी भी परम सौभाग्यशालिनी है। ऐसा कुल अत्यन्त धन्य है जिसमें भगवत् भक्त जन्म लेता है।

प्रायः देखा जाता है कि परिवार में कोई बालक सत्संगति में पड़कर भजन करने लगता है तो लोग उसका विरोध करने लगते हैं। तुम्हारी यह अवस्था भजन करने की नहीं है। तुम संसार देखो, वृद्धावस्था में भजन करना। अभी से साधुसंग करोगे तो तुम भी साधु बन जाओगे। वे भूल जाते हैं कि मृत्यु कब और किसको आ जाये, सुनिश्चित नहीं है। ध्रुव प्रहलाद, मोहन भक्त धन्ना जाट ने भी बालक अवस्था में भजन कर, अपने स्वयं का, 14 पीड़ियों का तथा संसार के अनेक लोगों को अपने भजन के प्रभाव से उद्धार कर दिया था। वह भजन ही कर रहा है कोई चोरी डकैती, वैश्यागमन तो नहीं कर रहा है परन्तु मायाग्रस्त लोग न स्वयं भजन करते हैं और न अपने बालकों को भजन करने देते हैं। वे भजन के विरोधी हैं, वे हमारे हितैषी नहीं प्रत्युत परम शत्रु हैं। यदि सम्भव हो तो अधिक व्यवधान बढ़ने पर उनका त्याग करना ही साधक के हित में है वे लौकिक दृष्टि से चाहे जितने प्रिय हों। वे माया ग्रस्त और अज्ञानी हैं। भजन विरोधी व्यक्ति किसी भी स्थिति में अपने नहीं हो सकते।

जिसने माया की परिधि से बाहर पैर रख दिया, वह उसके सम्मोहन से बच गया। भगवान् का प्रेम और सेवा

उनको ही मिलती है जिन्होंने पक्का दिल करके मैं और मेरा के बन्धन को तोड़कर, भजन किया है। वह सच्चे अर्थों में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहलवान है, जिसने माया का जाल काट दिया, वही माया के पार जाता है, तथा अपने परिवार का, कुल का और संसार का भी उद्धार कर देता है।

> अरे भाई!
> भजन ही तो
> कर रहा है,
> कोई चोरी तो
> कर नहीं रहा
> बालकपन से ही
> भजन का अभ्यास
> करना चाहिये
> बुढ़ापा आये न
> आये : क्या पता

अनिवर्चनीयं प्रेम स्वरूपम्
(ना.भ.सू.51)

प्रेम का स्वरूप अवर्णनीय है। प्रेम वाणी का विषय नहीं है। जो कहते हैं कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, वह पूर्णतः असत्य बोल रहा है। प्रेम तो व्यवहार से प्रकट होता है। प्रेम कभी पूरा नहीं होता है और जो पूरा हो जाता है उसके पीछे धन, यौवन, पद, रूप आदि में से कोई एक आधार होता है। आधार खत्म, प्रेम भी खत्म। ऐसा प्रेम स्थूल जगत् में ही होता है। कृष्ण से जो प्रेम होता है उसकी कोई सीमा नहीं है। श्रीकृष्ण असीम हैं तो उनका प्रेम भी असीम है। उसका आधार कोई स्थिति नहीं होती है वह तो प्रेम के लिए ही प्रेम होता है। उसमें निज सुख की गंध लेशमात्र भी नहीं होती है। उसमें देना ही देना होता है, प्रियतम को सुख ही उसका आधार होता है।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण के रूप को देखा जा सकता है परन्तु हजारों जिह्वा प्राप्त होने पर भी उनके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता है। उसी प्रकार उनका प्रेम भी वाणी का विषय नहीं है।

प्रेम कभी असत् नहीं होता है। श्रीकृष्ण सत है तो उनका रूप, अस्तित्व, लीला, नाम और धाम सभी सत्स्वरूप है। उसी प्रकार उनका प्रेम भी सत् है, जो मन वाणी और इन्द्रियों से प्रकट नहीं किया जा सकता है। स्थूल इन्द्रियों की तो बात छोड़िए जीव के चेतन स्वरूप से भी उनके प्रेम की अभिव्यक्ति असम्भव है। श्रीकृष्ण प्रेम अनुभूति का विषय है।

जगत् सत्य होकर भी अनित्य है परन्तु प्रेम अनित्य नहीं है। प्रेमी, प्रेमास्पद व प्रेम तीनों ही सत् हैं। जागतिक मनुष्यों में जो प्रेम जैसा भासता है, वह किसी न किसी स्वार्थ पर टिका होता है। स्वार्थ निकलता है तो तथाकथित प्रेम भी खिड़की के रास्ते से निकल जाता है। परमब्रह्म श्रीकृष्ण में मन और इन्द्रियों की गति नहीं है। इसलिए वस्तुतः वे क्या है, इसे इन्द्रियों से व्यक्त नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण गुणातीत है, इन्द्रियातीत है, उनका प्रेम भी गुणातीत है, इन्द्रिय अतीत है।

जिसमें प्रीति उत्पन्न हो, वही प्रेम है। यदि आपके लिए हमारे दिल में जगह हो तो आपका काला कलूटा रंग भी प्रिय लगेगा। आपकी गाली भी मीठी लगेगी। अप्रिय होने की स्थिति में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आपका गोरा रंग भी जलन उत्पन्न वाला होगा। मधुरवाणी भी कसैली लगेगी। तू शब्द भी कर्णप्रिय लगेगा। हमारे ब्रज में तो तू उसे ही कहा जाता है तो अत्यन्त प्रिय हो जब कि अन्य क्षेत्रों में इसे गाली समझा जाता है। वस्तुतः प्रेम को वाणी से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, प्रेम अनुभवगम्य स्थिति है। प्यारे को जो भी रुचिकर हो एवं जिस तरह से सुख मिले, वही प्रेम है।

रसिकाचार्य श्रीरूपगोस्वामिपाद द्वारा प्रेम के छः लक्षण "ददाति प्रति गृह्णाति....." यथा देना-लेना, गुप्त बात कहना और पूछना तथा प्रेम से खाना और खिलाना-ये षड़विधि प्रीति के लक्षण हैं परन्तु दोनों ओर से देने ही देने का प्रयास होता है वह भी उस सीमा तक, जहाँ तक प्रेमास्पद को सुखकर हो, रुचिकर हो-यह अनुभव किया जाता है, वाणी से कहा नहीं जाता है-इसीलिए सूत्रकार ने प्रेम को अविर्चनीय कहा है।

यदि प्रेम को किसी वस्तु विशेष या क्रिया विशेष से जोड़ दिया जाय तो उसमें सरसता का लोप हो जायेगा तथा जड़ता आ जायेगी।

शुद्ध प्रेम अटूट धारा है। टूटने का कारण उपस्थित होने पर भी जो प्रेम टूटे नहीं, वही सच्चा प्रेम है। प्रेम में कभी तृप्ति नहीं होती है।

मूकास्वादनवत्

(ना.भ. स. 52)

प्रेम गूंगे के स्वाद के समान है। अलौकिक या लौकिक जो अनिवर्चनीय है, वह निश्चित ही गूंगे के स्वाद के समान होता है। मेरा तो कथन यह है कि गूंगा व्यक्ति मीठे, नमकीन या खट्टे, कड़ुवे का स्वाद बता नहीं सकता क्योंकि उसके पास वाणी का अभाव है परन्तु जिनके पास वाणी है, वे भी यह नहीं बता सकते कि कैसा मीठा है ? कितना मीठा है ? यह तो चखकर ही पता चलेगा। सृष्टि का कोई भी व्यक्ति स्वाद का परिमाणात्मक रूप नहीं बता सकता है।

संसार में सुख और दुःख तथा रसात्मकता का अनुभव तो किया जा सकता है परन्तु परिमाणात्मक कथन नहीं कर सकता है। प्रेम को किसी उपमान से नहीं। समझाया जा सकता। प्रेम किसी वस्तु का नाम नहीं है कि वस्तु को उठाया और हाथ में धर दिया कि यह प्रेम है। यह तो दो के मध्य की अनुभूति है जो सुख और दुःख, गाली और प्यार दोनों में समान रूप से हो

> लेना और देना
> मन की बात
> कहना और
> सुनना
> प्रेम सहित
> खाना और
> खिलाना
> प्रीति के यह
> छः लक्षण हैं

सकता है।

प्रथम तो सोच की दशा एक सी रहती है। अतएव प्रेम की भी कोई निश्चित दशा नहीं कही जा सकती है। यदि उसकी कोई निश्चित दशा हो तो उसकी सरसता समाप्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होकर जड़ता आ जायेगी, उसमें उदात्तता नहीं रहेगी। प्रेम की गति वक्र होती है। यह वक्रता ही प्रेम में सरसता और सजीवता लाती है।

> प्रेम
> किसी वस्तु का
> नाम नहीं है कि
> उठाया और
> रख दिया हाथ
> में, कि ये लो
> यह है - प्रेम
> यह तो
> दो के मध्य की
> एक अनुभूति है

नायिका मानवती इसलिए नहीं होती है कि उसने सम्बन्ध विच्छेद कर दिये हैं या आज के शब्द 'तलाक' ले लिया है अपितु उसकी रूठने या मानवती होने से नायक के हृदय में मिलन या छेड़छाड़ की सजीवता का आलोड़न-विलोड़न होने लगता है- परन्तु इसमें केवल मान ही होता है, अभिमान या स्वाभिमान नहीं। प्रेम में अभिमान तो व्युत्क्रम उत्पन्न करता है। स्वाभिमान का सामाजिक व्यवहार में होना बुरा नहीं होता परन्तु नायिका का प्रेम में मान ही होना-दोनों ओर मिलन उत्कण्ठा में 'मूक' वृद्धि करता है-शुद्ध प्रेम में लम्बे अन्तराल या विलम्ब से मिलन, मान के भाव के मध्य में अवगुंठन (हल्का परदा) की भाँति खड़ा कर देता है। नायक का अनुनय-विनय उस अवगुंठन को विदीर्ण कर देता है। मान के कारण प्रेम, फिर भी अनिवर्चनीय रहता है, आक्रोश गल जाता है।

शुद्ध प्रेम में उपालम्भ तो हो सकता है, वाक् प्रहार भी हो सकता है परन्तु अभिमान को लेशमात्र भी नहीं है क्योंकि अभिमान में सहजता एवं सरसता का लोप हो जाता है तथा हृदय कुलिश हो जाता है। प्यार जिस हृदय मन्दिर में विराजता है वहाँ तो गुलाब, चम्पा, चमेली, मोंगरा, जूही आदि पुष्पों की कोमल सेज होती है, कठोरता नहीं। मान में प्रेम की अनुभूति बलवती होती है जबकि अभिमान से हृदय कपाट बन्द हो जाता है।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय।।

हम अपने प्रेमास्पद को प्रतिक्षण स्मृति में रखें, उसका नाम भी प्रेम नहीं है। स्मृति में तो माता-पिता और शत्रु भी रहते हैं परन्तु उनमें वैसा प्रेम नहीं होता जैसा प्रेमिका का अपने प्रेमी के प्रति होता है। गौड़ीय भजन पद्धति में राधा और कृष्ण, गोपियों का कृष्ण के प्रति जो विशुद्ध तत्सुखैक तात्पर्यमय आसक्ति है, वही प्रेम के अन्तर्गत चिन्तित है। यूं तो सेवक और स्वामी के मध्य, दो सखाओं के मध्य, पुत्र और माँ के मध्य भी प्रीति होती है परन्तु जो पूर्ण प्रीति की परिणति, गोपियों एवं राधाजी की कृष्ण के प्रति है, वह पूर्व कथित सम्बन्धों में देखने को नहीं मिलती, उनमें किसी सीमा तक मर्यादाओं का पालन किया जाता है परन्तु गोपियों और राधारानी का कृष्ण के प्रति जो प्रेम है उसमें उदात्तता अधिक है। श्रीमती रुक्मणी जी श्रीकृष्ण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से पैर नहीं दबवा सकती हैं 'क्योंकि परिणाम में नर्क में जाने का भय है। परन्तु राधाजी सेवाकुंज में नित्य चरण सेवा कराती हैं। क्योंकि वे जानती है, इससे श्रीकृष्ण को सुख मिलता है। यही उन्नत एवं उज्ज्वल प्रेम रस है। इसलिए प्रेम यदि है तो वह ब्रजगोपियों में ही हैं।

इसीलिए प्रेम, तोरई या, लौकी की तरह किसी रसोई बगीचा (बाड़ी) में पैदा नहीं होता है और न ही बाजार में ही बिकता है–यह तो प्रेमास्पद की सुखैक कामना में ही तैरता रहता है। इसीलिए कहीं से क्रय नहीं किया जा सकता, किसी से अभिव्यक्तभी नहीं किया जा सकता। इस हेतु ही 'मूकास्वादनवत्' है क्योंकि वाणी की क्षमता भी तो सीमाबद्ध है। जिसकी अनुभूति मन, चित्त और हृदय से होती है उसका वर्णन भी मननशील व्यक्तियों के लिए कठिन होता है। प्रेम अमूर्त भाव स्थिति है जो वाणी का विषय किसी भी काल में नहीं हो सकता। कण्ठ, अनुभूति आधिक्य से अवरुद्ध हो जाता है और वाणी गद्‌गद् हो जाती है।

पोटेशियम साइनाइड एक ऐसा रसायन है जिसका स्वाद कोई आज तक नहीं बता सका है परन्तु जिन्होंने चखा है वे तो स्वाद जानते हैं। प्रेम का स्वाद या रस कैसा है ? यह तो प्रेम करके चखने पर ही पता चलेगा। प्रेम के पथिक, समान अवस्था में होने पर, संकेतों से कुछ तृप्ति का बोध करते–कराते हैं परन्तु यह सामान्य लोगों की अनुभूति से परे का विषय है।

जगत् के लोग स्थूलदेह के प्रति अपनी अनुभूति को प्रेमगीत, गजल और शायरी के द्वारा भले ही व्यक्त करते रहे हों परन्तु श्रीकृष्ण प्रेम अलौकिक रस होने से बिना प्रेम किये अनुभव में नहीं आ सकता। मीरा जी भी व्यक्त नहीं कर पायी तभी तो उन्होंने कहा–

जो मैं ऐसा जानती
प्रेम किये दुःख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती
प्रेम न करिये कोय।।

अर्थात् प्रेम अभिव्यक्ति का विषय न होकर केवल अनुभूति का विषय है–इसमें चतुराई नहीं चलती।

वाह ! क्या उत्साह है

बहुत संकोच के साथ, डरते-डरते जनवरी 2010 से श्रीहरिनाम की सेवाराशि में थोड़ी वृद्धि की है जबकि बहुत पहले से ही इसके कागज, कवर, मुद्रण-स्तर आदि बहुत बेहतर हो गये हैं। दिस. 2009 तक 200/-रु. में 24 अंङ्क दिये जा रहे थे। यानि वही 100/- प्रतिवर्ष। यह दर पिछले 5 वर्षों यानि 2005 से चल रही है।

मुझे अत्यधिक सुखद आश्चर्य हुआ कि पाठकों ने इसे अति सकारात्मक उत्साह रूप में लिया और 200/- की राशि तो बहुत कम पाठकों ने प्रेषित की ही है। अधिकतर पाठकों ने 500/- और 1000/- एवं 1500/- प्रेषित कर निःशुल्क ग्रन्थ भी घर बैठे प्राप्त किये हैं। लगभग 95 प्रतिशत पाठकों ने अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करा लिया है। अभी भी क्रम चालू है। मुझे लगता है यह शत प्रतिशत हो जायेगा।

पाठकों एवं हितचिन्तकों की अहैतुकी कृपा से अनेक नवीन पाठक भी इस परिवार में जुड़े हैं। उनका स्वागत। अपने सुझाव एवं शंकाएँ भेजते रहें और इस पत्रिका से अन्य किसी को किञ्चित भी आनन्द प्राप्त होने की संभावना हो तो उसे भी अवश्य भिजवाएँ। आपके उत्साह को प्रणाम।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपदेश नहीं आचरण भी

श्रीगणेश उवाच

साधुओं के परित्राण, असाधुओं के विनाश एवं धर्म-संस्थापन-इन सब कार्यों के लिए भगवान् स्वयं नहीं आते हैं अवतार लेते हैं। यह उनकी करुणा है। युगावतार-रूप में अवतीर्ण हो कर युग-युग में वे धर्म का प्रवर्त्तन करते हैं; यह भी उनकी करुणा ही है। किन्तु इसकी अपेक्षा और भी अधिक करुणा होती है, जब वे स्वयं भगवान् श्रीव्रजेन्द्र-नन्दन रूप में अवतीर्ण होते हैं। तब वे रागमार्ग की भक्ति का प्रचार करते हैं। उस भक्ति के साधन से व्रज में श्री व्रजेन्द्रनन्दन की तत्-सुख-तात्पर्यमयी, प्राणों से भी प्रिय सेवा प्राप्त होती है।

गत द्वापर में ब्रह्माण्ड में स्वयं रूप से अवतीर्ण होकर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ने जीवों के प्रति करुणा के वशीभूत होकर रागमार्ग की भक्ति का प्रचार किया। द्वापरलीला के अन्तर्धान के पश्चात् अप्रकट गोलोकधाम में बैठकर उन्होंने विचार किया-"मैंने ब्रह्माण्ड में अवतीर्ण होकर अर्जुन को उपलक्ष्य करके-'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु'।। श्रीगीता 18।65 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।।' श्रीगीता 18।66।।-इत्यादि वाक्यों से रागमार्ग की भक्ति का प्रचार किया है। किन्तु कितने व्यक्ति इस उपदेश का अनुसरण करेंगे ? मायाबद्ध जीव अनित्य विषय-सुख में ही मग्न हैं, विषय-सुख से परे और भी कोई सुख है, इतना भी वे नहीं जानते। विशेषतः मैंने केवल उपदेश ही दिया है, भजन का आदर्श तो नहीं दिखाया। एक समुज्ज्वल आदर्श दिखाने पर ही भजनोपदेश का अनुसरण सुगम होता है। केवल उपदेश से विशेष काम नहीं बनेगा। जो व्यक्ति दुर्गन्धयुक्त कीचड़ को क्षीर समझकर उसी के खाने में तृप्ति का अनुभव कर रहे हैं, उनके मुख में यदि सुस्वादु एवं सुगन्धित क्षीर भर दी जाय, तो उस दशा में बिना किसी उपदेश के ही वे व्यक्ति कीचड़ के घृणोत्पादकत्व या हेयत्व का एवं क्षीर के उपादेयत्व का अनुभव करके उस कीचड़ का परित्याग करके क्षीर के लिए लुब्ध हो जायेंगे। मेरे उपदेश का अनुसरण करने पर जो वस्तु प्राप्त की जा सकती है, उसी प्रेमभक्ति को ही यदि जीवों को प्रदान कर दिया जाय, तो उस अवस्था में जीव विषय-सुख की तुच्छता का अनुभव करके प्रेमभक्ति के प्रति ही आकर्षित होंगे। पूर्वकल्प में किसी एक कलि में अवतीर्ण होकर मैंने जीवों को प्रेमभक्ति प्रदान की थी; उसके पश्चात् बहुत समय व्यतीत हो गया है, इस दीर्घकाल में फिर प्रेमभक्ति नहीं दी है। इस बार जाकर प्रेमभक्ति ही प्रदान करूँगा, तथा स्वयं आचरण करके भजन का आदर्श भी स्थापन करूँगा।" अतः वे संकल्प करते हैं कि सपरिकर अवतीर्ण होकर मैं कलि के युगधर्म श्रीनाम-सङ्कीर्तन का प्रवर्त्तन करूँगा एवं दास्य,

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सख्य, वात्सल्य एवं मधुर इन चारों भावों की भक्तिप्रदान करके जगत् के जीवों को प्रेम से उन्मत्त करके नचाऊँगा। मैं स्वयं भी भक्त-भाव को अङ्गीकार करूँगा एवं स्वयं भक्ति का आचरण कर सभी को प्रेमभक्ति की शिक्षा प्रदान करूँगा। "यही स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की शचीनन्दन श्रीगौरसुन्दर रूप में अवतरण की सूचना है।

युगावतार श्रीकृष्ण का अंश होता है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्तस्वरूप होते हुए भी स्वयं उनके बिना अन्य कोई भी भगवत्-स्वरूप व्रजप्रेम प्रदान करने में समर्थ नहीं है-

"युगधर्म का प्रचार तो मेरे अंश द्वारा भी हो सकता है, परन्तु शुद्ध-माधुर्यमय व्रजप्रेम मेरे बिना अन्य कोई नहीं दे सकता। अतः मैं स्वयं अपने भक्तों को साथ लेकर पृथ्वी पर अवतार लेकर अनेक प्रकार की लीलाएँ करूँ"-इस प्रकार विचार कर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कलियुग की प्रथम सन्ध्या में श्रीकृष्णचैतन्य रूप से नवद्वीप में अवतीर्ण हुए।

वर्तमान कलि के उपास्य रूप में जो अवतीर्ण हुए हैं, वे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, किन्तु उनका प्रति श्याम अङ्ग हेम-गौराङ्गी श्रीराधा के प्रति गौर अङ्ग द्वारा आलिङ्गित (आच्छादित) होने के कारण उनका बाहर का वर्ण अकृष्ण या पीत या गौर है। जिस द्वापर में श्यामसुन्दर वंशीवदन व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण आविर्भूत होते हैं, उसके ठीक बाद परवर्त्ती कलि में ही श्रीकृष्ण इस प्रकार गौरवर्ण में अवतीर्ण होते हैं। ऐसे कलि को ही विशेष कलि कहा गया है। गत द्वापर में ही श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए थे; इसी कारण वर्त्तमान कलि भी एक विशेष कलि है। श्रीमद्भागवत से ज्ञात होता है कि इस कलि में स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण गौरवर्ण से अवतीर्ण होते हैं।

द्वापर-लीला के अन्तर्धान के पश्चात् जिस समय श्री कृष्ण ने विचारपूर्वक स्थिर किया कि वे पुनः अवतीर्ण होकर श्रीव्यास-देव को प्रदत्त प्रतिश्रुति के अनुसार आपामर सर्वसाधारण को बिना विचार के प्रेमभक्ति दान करेंगे एवं स्वयं आचरण करके भजन का आदर्श भी स्थापन करेंगे, तभी उन्होंने यह भी स्थिर किया कि इस बार वे गौररूप में अवतीर्ण होंगे; क्योंकि इसी गौररूप में ही वे अखण्ड-प्रेम भण्डार के अधिकारी हैं, अत-एव इसी रूप में ही वे यथेच्छ-भाव से प्रेम वितरण कर सकेंगे। यह गौररूप भक्तभाव मय होने के कारण, स्वयं आचरण करके भजन का आदर्श स्थापन भी कर सकता है।

द्वापर में श्यामसुन्दर-कृष्णरूप से उन्होंने केवल प्रेम भक्ति प्राप्त करने के उपाय का उपदेश दिया है, आपामर-सर्वसाधारण को बिना विचार के प्रेमभक्ति उन्होंने प्रदान नहीं की; जबकि गौरसुन्दर रूप में वे प्रेमभक्ति प्रदान करने के संकल्प को लेकर ही अवतीर्ण हुए हैं। द्वापर में भजन का आदर्श भी स्थापन नहीं किया, जबकि इस बार भजन का आदर्श स्थापन करने का सङ्कल्प लेकर वे अवतीर्ण हुए। इसी कारण से अवतरण-विषय में भी श्यामसुन्दर कृष्ण की अपेक्षा गौर-सुन्दर-कृष्ण की करुणा का अपूर्ण वैशिष्ट्य है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लक्ष्मण को क्यों डांटा

शंका समाधान

राजा श्री दुर्जन सिंह जी

जब चित्रकूट में यह सूचना पहुँची कि श्रीभरत जी चतुरङ्गिणी सेना लिए धूम-धाम से चले आ रहे हैं, तब लक्ष्मणजी ने क्रोधावेश में भरत जी को युद्ध में पराजित करने की प्रतिज्ञा कर डाली। भगवान् श्रीराम तो उसको सुनते ही सन्न हो गये। बड़ी विकट परिस्थिति है। एक ओर वह प्यारा सरल भाई है, जो सर्वस्व त्यागकर अनन्य-भाव से सेवा में तत्पर है और इस क्षण भी सानिध्य में ही उपस्थित है एवं दूसरी ओर वह प्रिय भ्राता है, जो समीप नहीं है और जिसकी माता की क्रूरता के कारण ही आज वनवास का दारुण दुःख सहना पड़ रहा है; परन्तु जिसके साथ परस्पर परम गूढ़ और अनिर्वचनीय प्रेम है। सामान्य रूप से जगद् व्यवहारानुकूल अपरोक्ष पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है, किन्तु श्री भगवान् का हृदय ऐसी मुँहदेखी बातों को कब स्पर्श कर सकता था ? वहाँ तो परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही समान हैं। ऐसी दशा में अपने प्रेमी के विरुद्ध श्रीराम को एक शब्द भी कैसे सहन हो सकता था ? विरुद्ध शब्दों के कान में पड़ते ही प्रेमावेश से तत्काल उत्तेजित होकर श्रीराम ने प्यारे भाई श्रीलक्ष्मण के खिन्न होने की कुछ भी परवाह न कर ये वचन कह ही डाले-

"भाई लक्ष्मण ! धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वी-जो कुछ भी मैं चाहता हूँ, वह सब तुम्हीं लोगों के लिए, यह तुमसे मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ। भरत ने तुम्हारा कब क्या अहित किया है, जो तुम आज ऐसे भयाकुल होकर भरत पर सन्देह कर रहे हो ? तुमको भरत के प्रति कोई अप्रिय या क्रूर वचन नहीं कहना चाहिए। यदि तुम भरत का अपकार करोगे तो वह मेरा ही अपकार होगा। यदि तुम राज्य के लिए ऐसा कह रहे हो तो भरत को आने दो; मैं उनसे कह दूँगा-'तुम लक्ष्मण को राज्य दे दो।' भरत मेरी बात को अवश्य ही मान लेंगे।"

यहाँ यह शङ्का नहीं करनी चाहिए कि श्री भगवान् का श्रीलक्ष्मणजी में उतना प्रेम नहीं था; उनका तो प्राणीमात्र में प्रेम है, फिर अपने अनन्य सेवक प्यारे कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण के लिए तो कहना ही क्या है। यहाँ जो क्षोभ हुआ है, वह वास्तव में लक्ष्मणजी पर नहीं है; उनके हृदय में विकृति उत्पन्न हो गयी थी, उसी को निकालने के लिए श्रीभगवान् का यह कठोर यत्न है। भगवान् के वचन सुनते ही श्रीलक्ष्मण जी का मनोविकार नष्ट हो गया। इसी प्रकार अन्य प्राणियों के साथ भी किया जाता है। श्रीभगवान् को किसी से तनिक भी द्वेष नहीं है। सबके आत्मा होने के कारण वे तो सबके आत्मरूप हैं, केवल अंकुरित विकृतियों को ही यथोचित दण्डादि विधियों के द्वारा नष्ट किया करते हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मनिवेदन

'श्रीभगवान् को आत्मसमर्पण कर देना'–इस नवविधा–भक्ति में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। श्री भगवान् को आत्मसमर्पण कर देने के बाद भक्तों को फिर अपने लिए कुछ करना बाकी नहीं रह जाता। देह, मन, प्राण सब ही श्रीभगवान् की सेवा में नियोजित हो जाते हैं एवं उनका सब भार श्री भगवान् पर ही हो जाता है। जैसे कोई व्यक्ति अपनी गाय दूसरे को बेच दे। तब उसके बाद उस व्यक्ति पर गाय के पोषण–पालन, रक्षादि का कोई भार या दायित्व नहीं रहता, उसी प्रकार आत्म– निवेदन करने वाले का सब दायित्व श्रीभगवान् पर हो जाता है। उसे फिर अपने पालन–पोषण के लिए भी कोई स्वतन्त्र चेष्टा नहीं करनी होती है।

अपने दायित्वों से भागने का नाम 'आत्म–निवेदन' नहीं है। पूर्ण रूप से अपने आपको प्रभु के समर्पित कर देना। बैठते–उठते, खाते–पीते प्रभु का ही भजन, प्रभु का ही चिन्तन होता रहे। छोड़ना कुछ भी नहीं है। प्रभु को पकड़ना है। जो छूट जाय सो छूट जाय। बस प्रभु नहीं छूटें। केन्द्रित प्रभु पर करना है। यदि मन–वाणी और कर्म से प्रभु को समर्पित हो जाओगे तो इससे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। हाँ! हम आप लोगों को यह कल्पना सी लगती है। यदि इस ओर चेष्टा करें तो शतप्रतिशत न सही; पाँच, दस या पचास प्रतिशत भी आत्मनिवेदन हो जाय, अथवा प्रारम्भ तो करें अपने–आप प्रभु संभाल लेंगे।

निजप्रियवस्तुसमर्पण

विश्वकृपादर्शिनी टीका–श्रीभगवान् को अपनी सबसे प्यारी वस्तु को भेंट करना। वस्त्र हो अथवा भूषण या खाने–पीने की जो वस्तु भी अपने को अच्छी लगती हो, वही वस्तु ही श्रीभगवान् को अर्पण करनी चाहिए। अपनी प्रिय–वस्तु से ऐसी कोई भी वस्तु न समझी जाय जो अशुद्ध, अभक्ष्य एवं शास्त्र–नियम के विरुद्ध हो। श्रीभगवान् के भोगोपयुक्त वस्तु ही सदा समर्पण करने का आशय है।

प्रायः ऐसा अनुभव में आता है कि कोई भी वस्तु हमें अच्छी लगती है, उसे हम अपने प्रियजनों को भी शेयर करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हमारे प्रिय भी उस वस्तु का आनन्द उठायें। हमने फलां दुकान से फलां चीज खरीदी, तो मित्र को भी बताते हैं कि आप भी खरीदो। अथवा एक पैण्ट अपने लिए खरीदी तो एक और अपने भाई या मित्र के लिए भी खरीद लेते हैं।

इसी प्रकार अपने को प्रिय

लगने वाले आभूषण, वस्त्र, खाद्य पदार्थ आदि प्रभु को भी समर्पण करने चाहिए। अपने ड्राइंग रूप के पर्दे बढ़िया वाले लाकर बदले तो ठाकुर के कमरे के, ठाकुर की पिछवाई भी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बदलनी चाहिए। ऐसा नहीं कि ड्राइंग रूम के पुराने वाले पर्दे ठाकुर के कमरे में और अपने लिए नये आ गये। यह प्रभु के प्रति प्रीति का नहीं, उपेक्षा का भाव है। और जब दिखावटी नहीं, भय से नहीं, वास्तविक प्रीति हो जायेगी तो प्रिय वस्तु खरीदते समय ही भगवान् की याद अवश्य आयेगी। जैसे कुछ माताएँ जब अपना सूट या अन्य वस्तु खरीदती हैं तो तुरन्त कहती हैं–एक और ले लो। अरे भाई! किसके लिए? अरे फलां के लिए। अपनी बेटी के लिए। पंजाबी में एक मुहावरा है 'मैं नाल, मेरा मिट्ठू नाल'। अतः 'मैं नाल, मेरा ठाकुर नाल'–सदैव ऐसा? होना चाहिए।

कृष्णार्थे समस्तकर्मकरणम्

समस्त कार्यों को श्रीकृष्ण के लिए अर्थात् श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए ही करना। तात्पर्य यह है कि लौकिक व्यवहार तथा अन्य जो भी कार्य किया जाये वह श्रीकृष्ण–भजन के अनुकूल होना चाहिए। जो कार्य या अनुष्ठान कृष्ण–भजन के प्रतिकूल है उसे साधक कभी भी न करे।

कुछ भी करने से पूर्व उसमें कृष्ण को जोड़ लेना। अपितु कोई भी ऐसा काम न करना जिसमें 'कृष्ण' न हों। हमने जब पहली कार ली, तो पिताश्री से कहा। शीघ्र ही पिता जी बोले–"यह बढ़िया हो गया, अब राधाकुण्ड–गोवर्धन जाने में सुविधा हो जायेगी। आराम से दर्शन करके आ जायेंगे।"

सर्वथाशरणापत्ति

शरीर, मन एवं वाणी से सब बातों में श्रीकृष्ण के शरणागत होना। शरणागति के छः लक्षण श्रीहरिभक्तिविलास में कहे गये हैं–1. भगवद्–भजन के प्रतिकूल विषयों को व्रतरूप में ग्रहण करना। 2. भगवद्भजन के प्रतिकूल विषयों का त्याग करना। 3. श्रीभगवान् मेरी निश्चय ही रक्षा करेंगे–इस प्रकार का दृढ़ विश्वास होना। 4. श्रीभगवान् को ही रक्षाकर्त्तारूप में वरण करना। 5. श्रीभगवान् को आत्मसमर्पण करना तथा 6. भगवान् के चरणों में आर्त्तिज्ञान अर्थात् "मैं अति अधम, महाअपराधी भक्तिहीन हूँ, हे कृष्ण! आपकी कृपा के बिना मेरी और कोई गति नहीं है मेरी रक्षा करो, रक्षा करो"–इस प्रकार से आर्त्ति व दीनता का ज्ञापन करना। इन छः लक्षणों में रक्षाकर्त्तारूप में वरण करना प्रधान है। बाकी के पांचों अङ्ग इसके भीतर आ जाते हैं। शरणागति की अपार महिमा शास्त्रों में वर्णन की गई है। श्रीहरिभक्तिविलास (1–418) में कहा गया है–

तवास्मीति वदन् वाचा तथैव मनसा विदन्।
तत्स्थानमाश्रितस्तन्वा मोदते शरणागतः।।

'हे कृष्ण! मैं आपका ही हूँ'–मुख से इस प्रकार कहकर, मन से भी जो अपने को ऐसा ही जानता है तथा शरीर से श्रीवृन्दावनादि भगवद्– लीला–स्थलों का आश्रय लेता है–ऐसा शरणागत व्यक्ति आनन्द को प्राप्त करता है।

शरणागति के विषय में एक श्लोक अति प्रचलित है–

आनुकूल्यस्य संकल्पः,
प्रातिकूल्यस्य वर्ज्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो,
गोप्तृत्वे वरणं तथा आत्मनिक्षेप
कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

1–अनुकूलता विधान–

सदैव ही ऐसे कार्य करना, ऐसा व्यवहार करना जो प्रभु के अनुकूल हो, यानि जो उसे पसन्द हो, जो वह चाहता हो–वही करना। सर्व प्रकार से उसकी अनुकूलता का संकल्प मन में रहना चाहिये, अपनी नहीं।

2–प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्–

अर्थात् जो प्रभु को पसन्द न हो, जो प्रभु के प्रतिकूल हो, वह कार्य कभी न करना।

3–रक्षण–विश्वास–

हृदय में सदैव यह विश्वास रखना कि ये प्रभु सर्वविध मेरी रक्षा करने में सक्षम हैं। हर परिस्थिति में ये मेरी रक्षा कर सकते हैं और करेंगे–इस भाव में दृढ़ता रखना।

4–पालक भाव–

उस प्रभु को ही अपना पालक मानना अर्थात् मन में यह दृढ़ करना कि यह प्रभु मेरे पालन–पोषण में पूर्ण समर्थ हैं। और सर्व विध मेरी समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करेंगे।

5–आत्मनिवेदन–

शरण में जाने वाले के लिए पूर्ण रूप से मन–वचन–कर्म द्वारा अपने आप को समर्पित कर देना। हमारा शरीर उसके लिए, मन उसके लिए। सब कुछ उसी के ही लिए।

6–अकार्पण्य–

कृपणता या कार्पण्य का सामान्य अर्थ कंजूसी तो है ही साथ ही कार्पण्य का एक अर्थ विवेक–हीनता भी है और यहाँ जो भाव है, वह है अन्दर बाहर एकसा रहना।

अर्थात् पाँचों प्रकार की शरणागति को वास्तव में उसी मूल रूप में मान्य करना।

ऐसा नहीं कि ऊपरीभाव से शरणागत होना और अन्दर ही अन्दर कुछ योजना बनाते रहना। अतः शरणागति का यह महत्वपूर्ण अङ्ग है कि वास्तव में शरणागति के लिए ही शरणागत होना। न कि किसी अन्य छिपे हुए उद्देश्य हेतु शरणागत होना। साथ ही अकार्पण्य का यहाँ एक भाव और है वह है अनन्यता। यानि अपने प्रभु के अतिरिक्त अन्य किसी के समक्ष अपनी दीनता प्रदर्शन न करना, अपने दुखड़े न रोना। किसी दूसरे से किसी प्रकार की कोई कामना न करना।

ऐसे शरणागत भक्त को समस्त पापों से मुक्त कर देते हैं भगवान् श्रीकृष्ण। 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (गीता 18/66)

अपने पिता से अच्छे सम्बन्ध होते हुए
एवं पिता के पूर्ण समर्थ होते हुए भी
यदि हम पड़ौसी से सहायता मांगें तो
पिता को कष्ट होगा : अतः जो कुछ मांगना है
अपने ही इष्ट से मांगिये : इधर उधर मत भागिये
वह सर्व समर्थ है–अवश्य देगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैकुण्ठाज्जनितो वरा
मधुपुरी तत्रापि रासोत्सवाद्
वृन्दारण्यमुदारपाणि-
रमणत्तत्रापि गोवर्धनः।
राधाकुण्डमिहापि
गोकुलपतेः प्रेमामृताप्लावनात्
कुर्यादस्य विराजतो
गिरितटे सेवां विवेकी न कः।।9।।

वैकुण्ठ से राधाकुण्ड तक

प्रेरणा : श्रीखुराना जी

वैकुण्ठ से मथुरापुरी श्रेष्ठ है। रास-उत्सव होने के कारण मथुरा से वृन्दावन श्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण के केलि-विलास के कारण श्री वृन्दावन से गोवर्धन श्रेष्ठ है। गोकुलपति श्रीकृष्ण के प्रेमामृत की वन्या प्रवाहित होने से गोवर्धन से श्रीराधा-कुण्ड श्रेष्ठ है। अतएव कौन विवेकी व्यक्ति श्री गिरिराज तट पर विराजमान इस श्री राधाकुण्ड की सेवा न करेगा।

बुद्धि यह निर्णय करती है कि हितकारी क्या है और अहितकारी क्या है और विवेक हितकारी और अहितकारी में से निर्णय करके हितकारी को चुनता है। इसीलिए श्लोक में एक विशेष शब्द 'विवेकी' का प्रयोग हुआ है-जो ध्यातव्य है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है, श्रीकृष्ण के तो अनेक लीला-धाम हैं उनमें किस लीला धाम पर साधक को निवास करना चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर श्रीगोस्वामिपाद ने उपर्युक्त श्लोक में दिया है। श्रीकृष्ण निखिल ऐश्वर्य तथा माधुर्य परिपूर्ण हैं। किन्तु माधुर्य ही भगवत्ता का सार है। इसलिए श्रीकृष्ण के ऐश्वर्यात्मक लीलाधामों से माधुर्यात्मक लीलाधामों का परम उत्कर्ष है। जिस लीलाधाम में जितना माधुर्य अधिक विकसित हुआ है, उस धाम का उतना ही उत्कर्ष है। वैकुण्ठ श्रीकृष्ण का ऐश्वर्यात्मक-धाम है। वहाँ वे अपनी विलासमूर्ति श्रीनारायण के रूप में विराजमान हैं। किन्तु मथुरा में श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य के साथ-साथ उनके माधुर्य की भी अभिव्यक्ति है। अतः वैकुण्ठ से मथुरा का श्रेष्ठत्व प्रतिपादन किया गया है। किन्तु जिस लीला में श्रीकृष्ण अपने चरमतम माधुर्यपूर्ण स्वरूप से सर्वोत्कृष्ट मधुररस का आस्वादन करते हैं, वह लीला केवल श्रीवृन्दावन में ही आविर्भूत होती है। अतः मथुरा से वृन्दावन का श्रेष्ठत्व है। श्रीवृन्दावनान्तर्गत श्री गिरिराज-गोवर्धन का अधिक उत्कर्ष है, क्योंकि श्रीकृष्ण का निकुंज लीला-विलास श्रीगिरिराज की तलहटी में ही प्रकाशित होता है। श्रीगिरिराज के आस-पास में भी श्रीराधाकुण्ड का सर्वाधिक उत्कर्ष है, क्योंकि श्रीकृष्ण का प्रेम-अमृत ही श्रीराधाकुण्ड के रूप में विराजमान है। श्रीकृष्णप्रेम की परम उन्नत अवस्था का नाम है-मादनाख्य-महाभाव। उस मादनाख्य महाभाव की मूर्तिमान विग्रह हैं- स्वामिनी वृषभानु-नन्दिनी श्रीराधा। अतः श्रीराधाजी जिस प्रकार श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय है, उनका कुण्ड

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीराधाकुण्ड भी उन्हें उसी प्रकार परमप्रिय है, इसलिए जो भाग्यवान् साधक श्री कृष्ण–नाम–रूप–गुणलीला की सम्यक् प्राप्ति करना चाहते हैं, उनके लिए श्री राधाकुण्ड ही परम सेवनीय है–निवास करने योग्य सर्वोत्तम स्थान है। उस स्थान पर साधक को सर्वश्रेष्ठ कृष्ण–भक्तों का संग सहज में ही प्राप्त हो सकता है।।9।।

इस प्रकार वैकुण्ठ से मथुरा, मथुरा से वृन्दावन, वृन्दावन से गोवर्धन एवं श्रीगोवर्धन से श्रीराधाकुण्ड धाम की श्रेष्ठता है। और श्रीराधाकुण्ड की विशेषता है, श्रेष्ठता है उनकी प्रियतमा श्रीराधा के समान ही श्रीराधाकुण्ड की प्रियता के कारण।

श्रीराधाकुण्ड की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है। धेनुकासुर का वध करके जब श्रीकृष्ण निकुंज पधारे तो सखियों ने कहा, चाहे वह असुर था, था तो गौ के बछड़े के रूप में। अतः आपको गो–हत्या का पाप लगा है–आप उससे मुक्त होवो–तब आना यहाँ। तब हम आपका स्पर्श करेंगी। ठाकुर ने समस्त तीर्थों का आवाहन करके श्रीश्यामकुण्ड की स्थापना की और उसमें स्नान करके अपने आपको पाप–मुक्त किया और सखियों से कहा कि तुमने भी एक असुर का पक्ष लिया है, अतः तुम भी स्नान करो–इस कुण्ड में।

सखियाँ बोली–हम क्यों करें आपके इस कुण्ड में स्नान। हम तो अपना पृथक् कुण्ड बनायेंगी और उसमें स्नान करेंगी। प्रिया जी व सखियों ने कंकण यानि अपने कंगनों द्वारा श्रीराधाकुण्ड का निर्माण किया और समस्त तीर्थों का आवाहन किया। समस्त तीर्थ साक्षात् रूप में आ विराजे श्रीराधाकुण्ड में।

यह भी प्रियाप्रियतम की एक निकुंज की मधुर–रस की लीला ही है, अन्यथा भगवान् रसिक शेखर को 'पाप लगना' और 'पाप से मुक्तिहोना' 'पाप' की क्या बिसात! और क्या औकात जो हमारे ठाकुर को लगे। इसे एक मधुर–रस लीला के रूप में ही ग्रहण करना है।

साधक के साधना के अनेक स्तर हैं उनका शास्त्र में वर्णन है। साधना कैसी भी व्यर्थ नहीं जाती है। लेकिन आत्मनिरीक्षण एवं उत्तरोत्तर स्तर प्राप्त करने हेतु शास्त्र हैं। ऐश्वर्य रसोपासक या भय से विधिनिषेध पर केन्द्रित होकर भक्ति करने वाले साधक वैकुण्ठ को प्राप्त करते हैं। विधि–भय अर्थात् अतिथि यदि भूखा जायेगा तो हमारे

वैकुण्ठ से
मथुरा श्रेष्ठ है
मथुरा से
वृन्दावन श्रेष्ठ है
वृन्दावन से
गोवर्धन श्रेष्ठ है
गोवर्धन से
श्रीराधाकुण्ड
श्रेष्ठ है

समस्त पुण्यों का नाश हो जायेगा। 'हमारे पुण्यों का नाश हो जायेगा'–इस भय के कारण अतिथि को भोजन कराना विधि–भय है। और एक भूखा है भूख से व्याकुल है बिना कुछ कारण विचार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किये हुए उसकी भूख मिटाने हेतु भोजन कराने में विधि-भय नहीं है-सहजता है।

इसी प्रकार विधि-निषेध के भय से भक्ति करने वाले वैकुण्ठ को प्राप्त होते हैं। और ऐसे वैकुण्ठ से मथुरापुरी श्रेष्ठ है-क्योंकि यहाँ श्रीकृष्ण ने नर रूप में जन्म लिया और कंसवध आदि अपनी ऐश्वर्य-मयी लीलाओं का प्रदर्शन किया। अतः साधक को यथा सम्भव उत्तरोत्तर बढ़ने का प्रयास करना चाहिए। और यदि कुछ न भी हो पाये तो कम से कम जानकारी तो रहनी ही चाहिए कि श्रेष्ठता का क्या क्रम है, हम कहाँ पर हैं और अपने आपको श्रेष्ठ बताने वाले कहाँ हैं ? सच्चा साधु तो सदैव दीन होता है, वह अपने आपको श्रेष्ठ न बताता है, न मानता है। अतः साधकों को सावधान रहते हुए साधु एवं साधुवेशधारी में अन्तर करना चाहिए। सच्चे साधु की कृपा यदि हो गयी, सच्चे साधु का संग यदि मिल गया, सच्चे साधु की सेवा यदि हो गयी तो समझो बेड़ा पार हो जायेगा और एक से बढ़कर एक सीढ़ी को प्राप्त करते हुए अपने साध्य को निश्चित ही प्राप्त कर लेंगे-हम और आप।

-श्रीमद्रूपगोस्वामिपादकृत श्रीउपदेशामृत से

ओ मेरे घनश्याम !

श्रीभानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

ओ मेरे घनश्याम ! थाम लो अब तुम मेरी बाँह।
भटक रहा हूँ भवकानन में भूल गया हूँ राह।।
बिना तुम्हारे, और न कोई है मेरा रखवाला,
मोह-तिमिर ने अन्तस्तल में अपना डेरा डाला,
प्रभो ! न कोई करने वाला, है मेरी परवाह।
ओ मेरे घनश्याम ! थाम लो अब तुम मेरी बाँह।।
दूर-दूर तक दृष्टि डाल कर देख लिया जग सारा,
नहीं किसी को चैन यहाँ पर, हर कोई बेचारा,
सबको जला रहा है प्रतिपल भव का भीषण दाह।
ओ मेरे घनश्याम ! थाम लो अब तुम मेरी बाँह।।
जैसे उड़ जहाज का पंछी फिर जहाज पर आता,
वैसे ही मैं तुमको अपना परमाश्रय हूँ पाता,
हे शरणागत-वत्सल ! अपना करो नियम-निर्वाह।
ओ मेरे घनश्याम ! थाम लो अब तुम मेरी बाँह।।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रीरूप गोस्वामी

हमारे छः गोस्वामी
श्रीरूप • सनातन • भट्ट रघुनाथ
श्रीजीव • गोपाल भट्ट • दास रघुनाथ

प्रभुकृपा से पिछले अंक तक श्रीराधाजी की अष्टसखियों का वर्णन चल रहा था। इस अंक से छः गोस्वामिपाद का मंजरी स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। ये गोस्वामिगण मंजरी रूप से श्रीप्रिया जी की सेवा में नियुक्त रहते हुए–प्रिया–प्रियतम की यथासाध्य सेवाऐं सम्पादन करते रहते हैं।

मंजरी नाम	:	श्रीरूपमंजरी
कुंज नाम	:	रूपोल्लास
अवस्थिति	:	श्रीललिता जी की उत्तर दिशा
स्वभाव	:	प्रियनर्म
अंग शोभा	:	गोरोचन
वस्त्र	:	मोरपुच्छ वर्ण
आयु	:	13 वर्ष 6 मास
भाव	:	वाम मध्यात्व
पिता	:	रत्नभानु
माता	:	यमुना
पति	:	दुर्मेध
सास	:	जटिला
सेवा	:	चरणसेवा
यूथ	:	रूपवती, रसवती, रंगिणी, रसालिका, रत्नावली, पारिजाता

ध्यान

गोरोचनानिन्दि-निजांग कांतिं मयूरपिच्छाभसुचीनवस्त्राम्।
श्रीराधिकापाद सरोज दासीं रूपाख्यकां मञ्जरिकां भजेऽहम्।।

जो अपने अंगों की कांति से गोरोचन की कांति को भी निन्दित करती हैं तथा मोरपुच्छ कांतिमय रेशमी वस्त्र धारण करती हैं, श्रीराधिका के चरणों की दासी उस श्रीरूपमंजरी जी का मैं भजन करती हूँ।

• विवरण मानसी सेवा नामक ग्रन्थ से लिया गया है। डाकव्यय सहित एक सौ रु. में उपलब्ध •

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वृन्दावन में दो ऐसे स्थान हैं, जहाँ रात्रि में आज भी प्रिया-प्रियतम विलास करते हैं। एक है निधिवन, दूसरा है सेवाकुंज। सेवाकुंज के पिछवाड़े

आवरण कथा

योगमाया को भी चाहिये

की दीवार एवं श्रीहरिनाम प्रेस की दीवार एक ही है। एवं मुख्य प्रवेश द्वार से जब हम सेवाकुंज मन्दिर में प्रवेश करते हैं तो ठीक सामने पीली सी बिल्डिंग जो दीखती है, वही हमारा निवास है। प्रभु ने कृपा करके हमें ऐसे स्थान पर आश्रय दिया कि चाहते, न चाहते हमारे आँगन से सेवाकुंज का विहंगम दृश्य व रास चबूतरा स्पष्ट दीखता है, दर्शन होते हैं। अस्तु

सेवाकुंज के मुख्य प्रवेश द्वार के लगभग बगल में एक छोटा सा मन्दिर है, उस मन्दिर में ही मुखपृष्ठ पर मुद्रित श्रीपौर्णमासी जी का विग्रह विराजमान है। श्रीविग्रह को देखने से ऐसा लगता है कि यह विग्रह सामान्य विग्रहों से भिन्न है। इसकी शैली दो-चार हजार वर्ष पुरानी प्रतीत होती है। यहाँ सेवारत पुजारी जी ने बताया कि यह श्रीमूर्ति तीन-चार हजार साल पुरानी है। यहाँ एक ब्रजवासी परिवार द्वारा यह विग्रह वंश परम्परा से सेवित होता चला आ रहा था। प्रभु की इच्छा ब्रजवासी महाशय का अल्प आयु में शरीर शान्त हो गया। उनकी एक सुपुत्री हैं जिनके पति-दिल्ली के किसी हनुमान मन्दिर के महन्त या पुजारी हैं। पुत्र संभवतः कोई है या नहीं-स्पष्ट नहीं है। आजकल उनकी पत्नी वृद्धा हैं लगभग 90 वर्ष की आयु है। अति क्षीण एवं वृद्ध-असहाय। इन वृद्धा के बहिन के सुपुत्र श्रीविग्रह की सेवा पूजा करते हैं। मैं स्वयं अभी दर्शन करके समस्त वृत्तान्त देखसुन कर आया हूँ।

इतना अति प्राचीन विग्रह, और वह भी किसका ? योगमाया का। योगमाया कौन ? भगवान् श्रीकृष्ण की बड़ी बहिन, जो कंस के हाथ से छूट गयी और वैसे भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा शक्ति अथवा इच्छा। आज जो उनके मन्दिर की स्थिति है वह देखी नहीं गयी। इसका कारण भी उनकी ही इच्छा। और क्या कहा जाय ? लोग लाखों, करोड़ों रुपया खर्चकर-करके नये मन्दिर बनवा रहे हैं और ऐसे प्राचीन मन्दिर खण्डहरों में तब्दील हो रहे हैं- यह एक तो प्रभु की इच्छा है और एक विडम्बना भी है। मेरा सामर्थ्यवान पाठकों से अनुरोध है कि ऐसे मन्दिरों में जांय, दर्शन करें। यथा- योग्य सेवा करें जिससे इन प्राचीन विग्रहों का अस्तित्व समाप्त न हो जाय।

बने हुए फर्श और छतों को तोड़कर नयी छत या फ़र्श बनाने की अपेक्षा यदि हम वहाँ छत बनवायें, जहाँ छत है ही नहीं तो अति उत्तम है। यथा सामर्थ्य अवश्य दर्शन- सेवा कर, भगवान् की इच्छा-शक्ति की कृपा लाभ करें।

यहाँ पौर्णमासीदेवी का परिचय देना असंगत न होगा। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की व्रजलीला में पौर्णमासी देवी का अति महत्त्व है। नित्य स्वीया श्रीराधादि व्रजगोपियों के साथ श्रीश्यामसुन्दर का प्रकट-वृन्दावन में जो परकीया-भावाश्रित मधुरात्मक लीला मंच है, उसकी यह केवल सूत्रधार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही नहीं, सर्वविध लीलाओं का स्वच्छन्द सुचारु सम्पादन करती हैं। यह भगवान् श्रीकृष्ण की स्वरूप-शक्ति है। ऐसी महाप्रभाव-शालिनी अचिन्त्यशक्ति है कि लीलारस आस्वादन कराने के लिए स्वयं श्रीकृष्ण को, उनके परिकरों को विमुग्ध कर देती है, जिससे वे अपने स्वाभाविक स्वरूप को भूल जाते हैं तथा एक दूसरे के अनादि-सिद्ध नित्य सम्बन्ध से भी विस्मृत हो जाते हैं। यह सदा सम्भव को असम्भव और सर्वविध असम्भव को सम्भव कर देती है। इसलिए इसे "अघटन-घटन-पटीयसी" कहा जाता है। श्रीमद्भागवत (10।29।1) में "योगमाया-मुपाश्रिताः" अर्थात् महारास का श्रीभगवान् ने उपक्रम-आरम्भ इसी अचिन्त्य महाशक्ति योग-माया के संयोग से करने की इच्छा की, इसी पौर्णमासी का संकेत किया गया है। प्रकट लीला में नित्य-कान्त श्रीकृष्ण को एवं नित्यकान्ता श्रीराधाजी को परकीया-भाव की प्रतीति करा देती है, जिससे वे रसनिर्यास आस्वादन के लिए अपने-अपने स्वरूपों को भूले रहते हैं। व्रजलीला के सर्वोत्कर्ष की भूमिका निभाती है यह पौर्णमासी।

श्रीगोकुल में श्रीकृष्ण जन्म से भी पूर्व, एक दिन जब श्रीउपनन्द-आदि व्रजवासीगण सभा में बैठे थे तो यह एक तपस्विनी के वेश में वहाँ आ पहुँचीं। साथ में एक स्नातक था। अर्द्ध वृद्धावस्था थी इनकी, सिर के बाल सफेद और सफेद वस्त्र धारण कर रही थीं। इसे अति प्रभावशालिनी देखकर सब सभासद उठ खड़े हुए। यथायोग्य आसन दिया। श्रीउपनन्द जी ने पूछा-आपका परिचय ? यह बालक कौन है आपके साथ ? यह बोली-मेरा नाम पौर्णमासी है, मैं तपस्विनी हूँ। मैंने ज्योतिष शास्त्र का भी सम्यक् अध्ययन किया है। यह बालक मेरा नाती (पौत्र) है यानि मेरे पुत्र सान्दीपनिमुनि का पुत्र है। इसका नाम 'मधुमंगल' है। हम दोनों विशेष-विद्या के द्वारा सदा इसी अवस्था में ही रहते हैं, जैसा आप देख रहे हैं। हमारा रूप-स्वरूप सदैव एक सा रहता है। श्रीउपनन्द जी ने पूछा- हे तपस्विनि ! आपका यहाँ आगमन हम पर किस अनुग्रह के लिए हुआ है ?

श्रीपौर्णमासी ने कहा- आपके जीवन-स्वरूप श्री नन्दराज जी के घर निश्चय ही जगदानन्दकारी एक पुत्र जन्म लेगा-इस आनन्ददायक अनिर्वचनीय वैभव- प्राप्ति की सूचना देने आयी हूँ। यह सुन कर सब व्रजवासी आनन्द से फूले न संमाये, नेत्रों में प्रेमाश्रु, शरीर पर रोमावली- पूर्ण होकर बोले- तपस्विनी जी ! यदि आप हमारे इस महावन में निवास करें तो यह एक महान् तीर्थ बन जायेगा। हम विश्राम-प्रदायिनी यमुना के तट पर आपके लिए एक अति सुन्दर पर्णशाला निर्माण कर देते हैं। श्रीपौर्णमासी ने स्वीकृति दे दी और बोली- "यह मधुमंगल अभी मेरे साथ पर्णकुटी पर रहेगा। श्रीनन्दराज के पुत्र के बड़ा होने पर इसे मैं उसके हाथ सौंप दूँगी। यह उसका सखा-विदूषक बन कर उसे अतीव सुख प्रदान करेगा।"

लौकिक-लीला में श्री पौर्णमासी श्रीसान्दीपनि-मुनि की माता थीं। श्रीनारद जी की शिष्या थीं। श्रीगुरुदेवजी की आज्ञा पाकर स्वाभीष्टकृष्णप्रेम में व्यग्र- चित्ता होकर गोकुल में आयीं थीं। श्रीश्रीराधाकृष्ण लीलारसान्तर्गत संयोग-संघटन सहायता रूप सेवा के लिए यहाँ इनकी अवस्थिति है। सर्वसिद्धि-विधायिनी हैं यह। श्रीमधुमंगल श्रीसान्दीपनि मुनि का वह पुत्र है जिसे श्रीकृष्ण ने विद्या, अध्ययन के बाद गुरुमाता के आदेश से यमपुरी से लाकर गुरु- दक्षिणारूप में मुनि को दिया था। मुनि ने अपनी माता की सेवा के लिए इसे माता के साथ कर दिया था।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एकादशी में खाने और न खाने की लिस्ट

फोनोत्तर

मेरे पास एक फोन आया कि एकादशी में खाने और न खाने की बात को लेकर झगड़ा होता है अतः इस बार हरिनाम में खाने या न खाने की एक लिस्ट प्रकाशित करिये। इस विषय का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करता हूँ।

प्रायः यह एक विवाद का विषय रहा है कि एकादशी व्रत में अमुक वस्तु खायी जाय या न खायी जाय। कुछ लोग अदरक खाते हैं, कुछ नहीं खाते हैं। इसी प्रकार जीरा, घीया, गाजर आदि अनेक खाद्य पदार्थ हैं जिनके विषय में विवाद रहता है।

संक्षेप में यदि कहा जाय तो एकादशी में अन्न का खाना निषेध है और कन्द, मूल, फल, फूल–यह खाने चाहिए। अपने आप निर्णय करें कि यह पदार्थ इन चारों में आता है या नहीं और यदि फिर भी संशय है तो छोड़ दीजिए न। जरूरी है कि जीरा खाना ही है। मत खाइये। और मैं तो कहता हूँ कि क्या–क्या नहीं खाना– इसके स्थान पर यह नियम बनाइये कि एकादशी व्रत के दिन केवल आलू, पानी, कूटू का आटा, सेव, केला–केवल यह पाँच या सात चीजें ही खानी हैं। अड्डाइस दिन हैं न तरह–तरह के चटपटे पदार्थ खाने के लिए। एक दिन नहीं खायेंगे तो क्या ?

दूसरी बात है केन्द्रित होने की। आजकल व्रत हम करते हैं, लेकिन व्रत के मूल उद्देश्य को भूलकर केन्द्रित हो जाते हैं खाने पर। जबकि व्रत या उपवास का मूल उद्देश्य है–प्रभु के पास बैठकर भजन में इतना लीन हो जाना कि खाना–पीना भूल ही जांय। खाने का झंझट आज समाप्त। आज पूरे दिन प्रभु के पास बैठना, प्रभु का भजन करना–यही काम है।

विशेषकर एकादशी व्रत का भी यही मूल उद्देश्य है कि प्रभु का भजन और रात्रि–जागरण करके अपनी नींद में से कटौती करके श्रीहरिनाम संकीर्तन करना। और चूंकि रात में जागना है तो सात्विक फल–फूल खाये जांय, जिससे आलस्य न आये और श्रीहरिनाम संकीर्तन हो पाये। लेकिन आज हम संकीर्तन को भूल गये हैं। प्रभु के भजन को भूल गये हैं–मूल उद्देश्य से भटक गये हैं और बात करते हैं–क्या खायें और क्या न खायें। अरे भाई! कुछ भी खा लो–बस भजन बनता रहे। लेकिन सभी के लिए यह कठिन है, क्योंकि जैसा होगा अन्न–वैसी ही चित्त की वृत्तियाँ होगीं। अतः भोजन की, व्रत की, उपवास की बात कही जाती है। मैं तो कहता हूँ कि यदि एकादशी नहीं कर पाते–और एकादशी वाले दिन रात्रि जागरण करके रोज से अधिक भजन–संकीर्तन कर पाते हैं तो यह व्रत करते हुए भजन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न करने से ज्यादा बेहतर है। केन्द्र में भजन है, संकीर्तन है; न कि भोजन।

एक बहुत अच्छा उदाहरण आ रहा है। विवाह आदि के कार्यक्रम में हम लोगों को बुलाते हैं। सब लोग आते हैं। उत्साहित होते हैं। सम्मिलित होते हैं। मिलन से आनन्द होता है। साथ-ही लिफाफा भी देते हैं। ठीक है। लेकिन कुछ लोग न आते हैं, न जाते हैं और लिफाफा भिजवा देते हैं। लिफाफा मूल उद्देश्य नहीं है। मूल उद्देश्य है सम्मिलित होना। अनुमान कीजिए- कोई भी न आये और सबके लिफाफे आ जांय तो विवाह का आनन्द आयेगा क्या ? कभी नहीं। ठीक इसी प्रकार भोजन में यह खाना, और यह न खाना तो लिफाफा है। मूल उद्देश्य है विवाह यानि- भगवद्भजन में वृत्ति। रोज से अधिक भजन होना। रात्रि में जागरण करके हरिनाम-संकीर्तन करना।

यदि आप रोज से अधिक श्रीनामसंकीर्तन नहीं करते हैं तो खा लीजिए-करेले की सब्जी या आलू की सब्जी एकादशी के दिन। इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। वैसे भी एकादशी हरिवासर व्रत है। यह श्रीहरि का दिन है। 'वासर' माने दिन। यानि हरि का दिन। दिन तो दिन, आधी रात भी श्रीहरि के नाम पर समर्पित होनी है- आज। श्रीहरि को समर्पित होना है-अतः हमारा चित्त, मन, इन्द्रियां तमोगुण, रजोगुण से दूर रहें इसलिए हम आज तामसिक, राजसिक, वस्तुओं का त्याग करें और सात्विक और हल्के फल आदि का प्रसाद पायें, जिससे तन-मन-वचन से आज श्रीहरि के दिन श्रीहरि के हो जांय।

'एकादशी के दिन समस्त पाप अन्न में वास करते हैं'-यह भी शास्त्र का ही वचन है-यदि इस वचन के कारण आप भयभीत होकर व्रत करते हैं तो ठीक है, लेकिन भयभीत होने की बजाय श्रीहरि से प्रीत होने के कारण व्रत करेंगे तो 'पाप' तो हमारा बाल भी बांका नहीं कर सकता। क्योंकि पाप को समाप्त करने की शक्ति तो 'नामाभास' में ही विद्यमान है। हम तो नाम-संकीर्तन कर रहे हैं। वैसे भी नाम में पाप को हरण करने की इतनी अधिक शक्ति है कि उतने पाप तो कोई पापी कर ही नहीं सकता है। अतः पाप के भय से नहीं। प्रभु को रिझाने के लिए है एकादशी का दिन। व्रत रखिये। क्या खाना की अपेक्षा-कोई 5 पदार्थ निश्चित कर लीजिए- बस वही खाइये और इस दिन

> शादी में
> कोई भी व्यक्ति
> या रिश्तेदार
> न आये और
> सभी के
> लिफाफे आ जांय
> तो क्या
> शादी में
> आनन्द आयेगा

अधिक से अधिक भजन करने की चेष्टा करिये। प्रभु को रिझाने की चेष्टा करिये। रात्रि में जाग कर संकीर्तन की चेष्टा करिये। खाना-पीना तो बहुत छोटी एवं गौण बात है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(सम्पूर्ण व्रज में, विशेष-कर वृन्दावन में बन्दर बहुत हैं, आजकल तो बन्दर अत्यधिक उत्पात भी मचाते हैं। बड़ी सफाई से आपका चश्मा उतारकर ले जाना तो उनकी सहज कला है, जो प्रायः परेशानी का कारण बनती है। इसका कुछ बालकों द्वारा दुरुपयोग भी हो रहा है। थोड़ी सी सावधानी से इससे बचा जा सकता है। विद्वान् लेखक ने शोधपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किये हैं: सम्पादक)

ब्रज में वानरों का प्राचुर्य क्यों?

वानर भी नटखट नन्दकिशोर के प्रिय प्राणी

श्री म. ल. वराड पांडे

शायद वानर भारतवर्ष के अतिप्राचीन प्राणी रहे होंगे। पुराणवस्तु संशोधन शास्त्र तथा प्राचीन साहित्य में इसके प्रचुर प्रमाण मिलते हैं।

सैंधवी संस्कृति से सम्बन्धित जो उत्खनन किया गया उससे प्राप्त वस्तुओं में वानरों की कुछ लघु प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। इतना ही नहीं ऋग्वेद के दशम स्कन्ध के एक सूक्त में वृषाकपि नामक एक उत्पाती वानर का उल्लेख आया है। यह वानर इन्द्र का अतिप्रिय था, परन्तु इन्द्राणी उसे बिलकुल पसन्द नहीं करती थी। कारण वह उसके द्वारा सम्पादित यज्ञ सामिग्री की तोड़-फोड़ करता था।

एक किंवदन्ती के अनुसार व्रज-वृन्दावन का गोवर्धन पर्वत हनुमान से सम्बन्धित है। कहते हैं कि जब हनुमान हिमालय के संजीवनी बूटी वाले शिखर को उठाकर आकाशमार्ग से लंका की ओर जा रहे थे तब उसका एक विशाल प्रस्तर-खण्ड टूटकर ब्रज में गिरा। वही गोवर्धन नाम से विख्यात हुआ। यह किंवदंती हम माने तो गिरिवर गोवर्धन एक वीरवर वानर की ही देन है। हो सकता है किष्किन्धा के वानरराज के अहिवासियों की एक शाखा गोवर्धन के गिरिकन्दरों में एवं सघन वन में बसने आयी हो।

यह निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता परन्तु कृष्ण-काल के पहिले से ही ब्रज-वृन्दावन में वानरों की बस्ती थी यह बात तो भागवत महापुराण के उल्लेखों से स्पष्ट है।

नटखट नन्दकिशोर अपनी माखनचोरी के लिए तो विख्यात हैं परन्तु ब्रज- गोपियों की नाराजगी उनकी माखन चोरी के बारे में इतनी नहीं थी जितनी उनके वानर-प्रेम के विषय में थी।

कृष्ण और ग्वालबालों कीं क्रीड़ा का वर्णन भागवत पुराण के दशम स्कन्ध के बारहवें अध्याय में आया है। वह इस प्रकार है-

"कोई-कोई बन्दरों की पूँछ पकड़कर खींच रहे थे तो दूसरे उनके साथ इस पेड़ से उस पेड़ पर चढ़ रहे थे। कोई-कोई उनके साथ मुँह बना रहे थे, तो दूसरे उनके साथ एक डाल से दूसरी डाल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर छलाँग मार रहे थे।"

इस खेल में भी कृष्ण सबके आगे रहे होंगे। उसी स्कन्ध के आठवें अध्याय में गोपियाँ नटखट कृष्ण की कहानियाँ लेकर माता यशोदा के पास जाकर कहती हैं–

"यह चोरी के बड़े–बड़े उपाय करके हमारे मीठे–मीठे दही–दूध चुरा–चुराकर खा जाता है। केवल अपने ही खाता तो एक बात थी, यह तो सारा दही–दूध वानरों को बाँट देता है।"

एक बार तो माता यशोदा ने उन्हें रंगे हाथ पकड़ ही लिया। नवें अध्याय में कहा है–

"इधर–उधर ढूँढ़ने पर माता यशोदा को पता चला कि श्रीकृष्ण एक उलटे हुए उखल पर खड़े हैं और छीकें का माखन ले–लेकर बन्दरों को खूब लुटा रहे हैं।"

कृष्ण के बाद भी बन्दरों को मान–सम्मान देने की प्रथा चलती रही। भागवत के ग्यारहवें खण्ड के द्वितीय अध्याय में कहा गया है–

महाराज परीक्षित् ने इन्द्रप्रस्थ के हजारों बड़े–बड़े सेठों को बुलाकर मथुरा में रहने की जगह दी। इनके अतिरिक्त सम्राट् परीक्षित ने मथुरामण्डल के ब्राह्मणों तथा प्राचीन वानरों को जो भगवान् के बड़े ही प्रेमी थे, बुलवाया और उन्हें आदर के योग्य समझकर मथुरा नगरी में बसाया।"

वे वानर बुद्धकाल तक वहाँ थे। "चीनी यात्री ह्वानसांग ने अपने यात्रा विवरण में लिखा है एक बार बुद्ध मथुरा से प्रायः 4 मील दक्षिण–पूर्व में एक सूखे तालाब के किनारे घूम रहे थे। उस समय एक बन्दर ने उन्हें शहद अर्पित किया था, जिससे उसे मनुष्य योनि प्राप्त हुई थी।" (ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास : प्रभुदयाल मित्तल)

कश्मीर के पण्डित सोमदेव भट्ट 11वीं शताब्दी में कथा सरित–सागर नाम के ग्रन्थ की रचना की। इसके सप्तम लंबक में मथुरा के पास के बन्दरों से भरे वन का उल्लेख आता है। वे निश्चित ही कृष्ण–काल के बन्दरों के वंशज रहे होंगे।

प्रभुदयाल मित्तल लिखते हैं। "वृन्दावन में निधिवन और सेवाकुंज ये दो ऐसे स्थल हैं जिन्हें प्राचीन वृन्दावन के अवशेष कहा जा सकता है इनमें सघन लता कुंज विद्यमान है।" इस प्राचीन स्थल में पशु–पक्षियों के जो नाम उन्होंने गिनाये हैं उनमें प्रमुख उल्लेख बन्दर का आता है।

बन्दर ब्रज–वृन्दावन का प्राचीनतम जीव है जो कृष्ण को भी प्रिय था।

जो भौतिकता
अप्राप्त है
उसका ज्ञान
श्रवण से होता है।
अतः जो अप्राप्त है
उसके बारे में बात
मत करो,
श्रवण मत करो
स्त्री, धन, वैरी,
नास्तिक
का चरित्र श्रवण
मत करो,
दुःख होगा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेरे पुत्र का अपमान या सम्मान

पत्रोत्तर

शास्त्र में अनेक मत हैं। अनेक सम्प्रदाय हैं। अनेक पंथ हैं। अनेक साधन हैं। क्योंकि सृष्टि में विविधता है। अनेक रुचि, अनेक प्रकृति के लोग हैं–इसलिए अनेक साध्य–साधन भी हैं। उन अनेक में से एक को चुनने के लिए ही श्रीगुरु दीक्षा है। अब जब श्रीगुरु से दीक्षित हो गये। श्रीगुरुदेव ने जो मार्ग बता दिया–अब अनन्य होकर उसी मार्ग, साधन पर चलना है। अब भटकन समाप्त। अब इधर–उधर नहीं जाना है। अब अपनी एक दिशा है, उद्देश्य है, साध्य है।

होटल मैनेजमैण्ट का कोर्स कर लिया तो अब होटलों में नौकरी तलाशनी है, वहीं अच्छी नौकरी मिलेगी, उसमें ही प्रगति करनी है। अब एकाउण्टेण्ट या फाइनेन्स हैड नहीं बनना है हमें। तो क्या फाइनैन्स हैड या एकाउण्टेण्ट की कोई अहमियत नहीं। उनका सम्मान नहीं करना चाहिए। ऐसा नहीं है।

अनन्यता की जहाँ–जहाँ बात आती है, वहाँ यह कहा गया है कि निष्ठा सदैव अपने इष्ट में रक्खो। सम्मान सभी का करो। जैसे एक स्त्री का पति तो एक ही होता है, लेकिन वह अपने पति के माता, पिता, भाई, बहिन आदि सभी का सम्मान करती है। ठीक उसी प्रकार अपने इष्ट का सदैव अनन्यता से भजन करना चाहिए और सम्मान सभी देवी–देवताओं का करना चाहिए।

जहाँ तक श्रीकृष्ण–भक्तों की बात है तो शास्त्र कहता है कि 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'। श्रीकृष्ण ही साक्षात् स्वयं भगवान् हैं। अन्य समस्त देवी–देवता श्रीकृष्ण की विभूति हैं। विभूति यानि कम या अधिक अंश में वे हैं श्रीकृष्ण के ही अंश। अतः जब श्रीकृष्ण स्वयं रूप में उपलब्ध हैं तो अन्य देवी–देवताओं की पूजा क्यों करें ?

लेकिन लोक में रहते हुए, लोकाचार के लिए या बहुत अधिक बार कुलदेवता या कुलदेवियों के पूजन की परम्परा होती है। परिवारों में फलां देवी की पूजा पीढ़ियों से चली आ रही है तो क्या उसे बन्द कर देना चाहिए ? या परिवार के अन्य सदस्य करना चाहते हैं तो नहीं करने देना चाहिए। यही परिस्थिति भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख भी उपस्थित हुयी थी। व्रजवासी इन्द्र की पूजा करते थे। श्रीकृष्ण ने इन्द्र पूजा बन्द करवा कर अपनी पूजा श्रीगिरिराज रूप में करवायी। श्रीकृष्ण तो श्रीकृष्ण थे–उन्होंने फिर इन्द्र के कोप को भी झेला और परिस्थिति सामान्य कर दी।

हम तो पूरी तरह से अनन्य क्या ? श्रीकृष्ण भक्त भी नहीं है। अतः परिवार में या कभी भी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो तो उस देवी–या देवता को श्रीकृष्ण की विभूति श्रीकृष्ण की सृष्टि का एक अंश मानकर उसकी पूजा में सम्मिलित हो

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाना चाहिए, हमारी भावना यदि ऐसी होगी तो वह पूजा श्रीकृष्ण को ही जायेगी। लेकिन यह है आपद्धर्म इसका अर्थ यह नहीं कि श्रीकृष्ण की पूजा छोड़कर फलां देवी की ही पूजा करने लगें। श्रीकृष्ण की पूजा छोड़ दें। कभी-जभी जब ऐसा अवसर आ जाय तो ऐसा करना चाहिये। यह तो देवी-देवता हैं, वैष्णव को तो जीव मात्र का अपमान करने की भी अनुमति नहीं है।

आप मेरा सम्मान करते हैं। मुझे प्रणाम करते हैं। मैं आपके घर आता हूँ तो मुझे प्रसाद पवाते हैं-आदि। कभी ऐसा हो कि मेरा पुत्र आपके घर आये और वह बताये कि मैं उनका पुत्र हूँ तो क्या आप उसे भगा देंगे ? अरे हमारा इस लड़के से क्या मतलब ? हम तो इसके पिता का ही सम्मान करते हैं। इससे शायद मुझे भी अच्छा नहीं लगेगा। मेरा पुत्र आ गया तो कर दीजिए उसका भी यथायोग्य सम्मान। उसके सम्मान से मैं भी प्रसन्न ही होऊँगा और मैं यह भी ध्यान रखूँगा कि ये बड़े सज्जन लोग हैं, मेरा तो करते ही हैं, एक बार बार मेरा पुत्र मिल गया इन्हें, तो उसका भी बड़ा सम्मान किया।

तो यह समस्त देवी- देवता, कुल देवियाँ श्रीकृष्ण की विभूति ही हैं। इस भाव से इनकी पूजा कर लेने में कोई हानि नहीं है। लेकिन कृष्ण-पूजा छोड़कर केवल इनकी पूजा करना श्रीकृष्ण की ही अविधिपूर्वक पूजा करना है- ऐसा गीता में स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है। तो भैया जब करनी ही है तो विधिपूर्वक कर लो। श्रीकृष्ण की ही पूजा कर लो।

हमें जब करनी है- श्रीकृष्ण की पूजा करनी है-इस अनन्यता को देवी में श्रीकृष्ण अंश के दर्शनकर के भी हम सार्थक कर सकते हैं। यह बात हम आप जैसे साधकों के लिए है। जो परम सन्त हैं- वास्तविक रूप में अनन्य हैं, उन्हें तो श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कुछ दीखता ही नहीं है। जहाँ जहाँ दृष्टि पड़े तहाँ तहाँ श्रीकृष्ण स्फुरे।

होरी

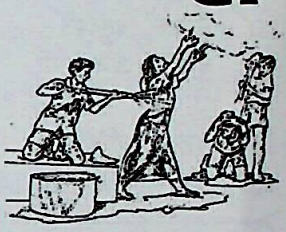

होरी ऐसे कोई मनाये
एक बूंद भी रंग न लागे
मनुवा भीजा जाये।।
नीला पीला उजला काला
रंग गुलाल उड़ाये।।
हमरे रंग की बात अनोखी,
मुख सों कही न जाये।।
मन भीजे तन भीजे साधो
भीज-भीज जम जाये।।
कासे कहूँ अब खेलो होरी
वह आप ही रंग लगाये।।
होरी ऐसी जिन जिन खेली
श्याम ही रंग लगाये।।
तिन के चरण पकड़ हम राखे
बड़े भाग सों दर्शन पाये।।

आध्यात्मिक कवि
श्री जीवन जी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अप्रैल 2010

वैष्णव व्रतोत्सव

वैशाख कृष्णपक्ष तृतीया से द्वितीय वैशाख कृष्णपक्ष द्वितीया सं0 2067 तक

10	शनि	एकादशी	वरूथिनी एकादशी व्रत। रविवार को 9.33 से पूर्व पारण।
13	मंगल	चतुर्दशी	वैशाखी महोत्सव।
14	बुध	अमावस्या	श्री गदाधर पण्डित जी का आवि. महो.।
			श्रीहरिद्वार में तृतीय शाही स्नान।
15	गुरु	प्रतिपदा	पुरुषोत्तम मास प्रारंभ।
25	रवि	द्वादशी	कमला एकादशी व्रत।

आनन्द वर्षा

▲ 51 कुण्डीय श्रीगोपाल महायज्ञ का आयोजन हुआ कुम्भ में। सान्निध्य रहा आचार्य श्रीविष्णुकान्त जी शास्त्री का।

▲ वृन्दावन शोध संस्थान में सृजन यात्रा कार्यक्रम में अनेक कविगणों ने अपनी रचनाऐं प्रस्तुत कीं।

▲ 21 व 22 फरवरी को आचार्य श्रीपीयूष जी के सान्निध्य में श्रीगिरिराज परिक्रमा का आयोजन किया गया।

▲ श्री मोहन स्वरूप भाटिया जी की अध्यक्षता में श्रीराधाचरण जी का स्मृति दिवस आयोजित हुआ। स्वागताध्यक्ष थे: आचार्य श्रीचैतन्य गोस्वामी।

▲ 18 से 24 फरवरी तक पुरी में महाप्रभु नीलाचल आगमनोत्सव श्रीगौर गम्भीरा में आयोजित हुआ।

▲ ब्रज में अद्भुत होली महोत्सव समस्त मंदिर-आश्रमों में सम्पन्न हुए।

▲ श्री कौशिक जी महाराज द्वारा श्रीमद्भागवत सप्ताह 1108 कथा का आयोजन किया गया।

▲ संत श्रीरसिया बाबा द्वारा कुम्भ स्थित रसिया बाबा नगर में अनेक धर्मानुष्ठान सम्पन्न किये।

▲ महाप्रभु श्रीचैतन्य की जयंती पर अनेकानेक कार्यक्रम/अभिषेक सम्पन्न हुए।

▲ श्रीश्यामानन्द नगर द्वारा देवालयों की अभूतपूर्व शोभा यात्रा पूरे नगर में निकाली गयी, इस शोभायात्रा पर हैलीकोप्टर द्वारा पुष्प वर्षा की गयी, जो एक कौतुहल एवं प्रसन्नता का विषय था। कुल मिलाकर फरवरी-मार्च में आनन्द की जो वर्षा वृन्दावन में हुयी-वह अविस्मरणीय रहेगी।

बिहारी तुम बिन मन बेचैन

जब से गयौ पाती नहिं पठयी, कलपत हैं दोऊ नैन।
दरशन दुरलभ अति दुखदायी, नाहिं मिलत है चैन।।
सूनी सेज सुहाये न मोहि काटे कटन नहिं रैन।।
'श्यामसखा' सुनहु निज हिय की, आवहु मम सुधि लैन

वैद्य श्रीभँवरेश्वर मिश्र 'श्यामसखा'

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्मा - विष्णु - महेश

भगवान् विष्णु सृष्टि की रचना करते हैं, श्रीब्रह्माजी सृष्टि का पालन करते हैं और श्रीशिव सृष्टि का संहार करते हैं। ये तीनों स्वयं त्रिगुणात्मिका माया से अछूते हैं। इन पर इन तीनों गुणों का कोई प्रभाव नहीं है। लेकिन इनके जो उपासक हैं, उनके स्वभाव में उस-उस गुण का आधिक्य है - वह जिसकी उपासना करता है।

श्रीविष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि के उपासक सदैव ही सत्व-गुण युक्त होते हैं। श्रीब्रह्मा, इन्द्र आदि अन्य देवताओं के उपासक प्रायः रजोगुणी होते हैं। रजोगुणी अर्थात् सकाम होते हैं।

श्रीशिव के उपासक, देवी, दुर्गा, काली, भैरव आदि के उपासक प्रायः तमोगुणी होते हैं। सावन में श्रीशिव पर जल चढ़ाने के लिये टोल के टोल काँवड़ियों के निकलते हैं और आप हम सभी जानते हैं कि ये लोग प्रतिवर्ष शिवपूजन के नाम पर कितना उपद्रव, हाइवेजाम, बसों को जलाना, हिंसा करते हैं। परिणाम स्वरूप 2-4-10 लोग मर भी जाते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। बल्कि हमें ही सावधान रहना चाहिये। तमोगुणी-टोल को देखकर खुद ही बच निकलना चाहिये। साँप या कुत्ता यदि काटता है तो क्या आश्चर्य है - यह उसका स्वभाव है। गलती तो हमारी है कि हम उससे अपने आपको बचा नहीं पाये।

वैसे हम वैष्णव तो श्रीशिव को वैष्णवाग्रगण्य मानते हैं। परम सरल, परम भक्त हैं श्रीशिव। श्रीरासलीला दर्शन हेतु गोपी बन गये और गोपेश्वर कहलाये। श्रीमद्भागवत आदि अनेकानेक श्रीकृष्ण, श्रीराम कथायें सर्वप्रथम श्रीशिव ने ही माँ पार्वती को सुनायीं। कितने तन्त्र ग्रन्थों में जाने कितने ही स्तोत्र एवं अष्टक श्रीशिव-गौरी ने सुने सुनाये। हम वैष्णवों के लिये तो श्रीशिव तमोगुणी नहीं हैं। परम वैष्णव हैं। बाकी तो सब भाव-राज्य है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मासिक पत्र

RNI REGN NO. 20309/70

श्रीहरिनाम

455

POST REGN. NO. MTR 22/09-11

वर्ष : 40 • अंक : 3
मार्च : 2010

आदि सम्पादक : व्रजविभूति 'श्रीश्यामदास' श्रीश्यामलालजी हकीम

सम्पादक :
डॉ. गिरिराजकृष्ण नांगिया
एम.ए., पी–एच.डी., साहित्यरत्न
सम्पादक–शिरोमणि
098370-21415

सह सम्पादक :
श्रीगणेशदास चुघ
रामायण विशारद

प्रबन्ध सम्पादक :
डॉ. भागवतकृष्ण नांगिया
098370-31415

प्रकाशक एवं पता :
श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल
बाग बुन्देला, लोई बाजार, वृन्दावन–281121

मुद्रण–संयोजन :
श्रीहरिनाम प्रेस
हरिनाम पथ, लोई बाजार, वृन्दावन
0565-2442415, 2443415

न्योछावर :
20 रु. : 1 अंक
100 रु. : 6 अंक
200 रु. : 19 अंक
500 रु. : 48 अंक
1000 रु. : 96 अंक
300 रु. का साहित्य नि.शुल्क
1500 रु. : 120 अंक
750 रु. का साहित्य नि.शुल्क

हमारा HDFC बैंक एकाउण्ट नम्बर
0268–1530–0017–20
SHUCHITA or GIRIRAJ PRASAD

आवरण चित्र : विवेक स्टूडियो 09837209393

जो कुछ भी है
उसके अतिरिक्त
जिसे और कुछ भी
नहीं चाहिये
वही दुनिया का
सबसे बड़ा
धनी व्यक्ति है
अन्यथा तो
हाल हमारे–आपके
सामने है

अव्यावसायिक संस्था श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल द्वारा प्रकाशित

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh